CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगपति चतुर्वेदी

H
249

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग H
पुस्तक क्रम संख्या 249
State Museum Library, Lucknow

अद्भुत जन्तु

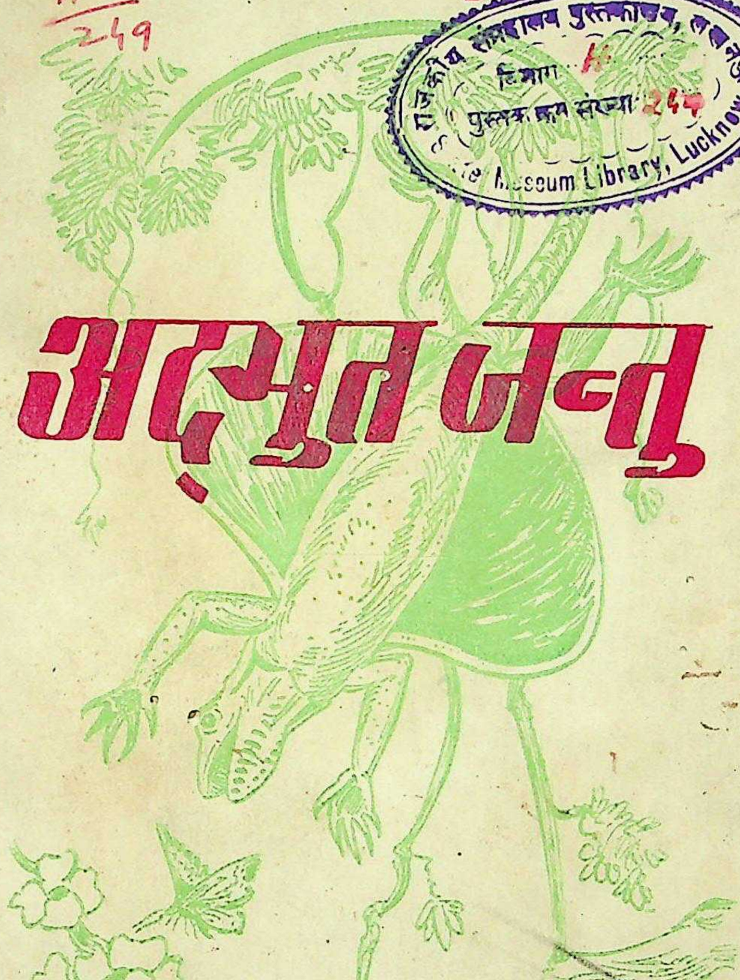

किताब महल प्रकाशन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्भुत जन्तु

[विचित्र आकार-प्रकार के जन्तुओं तथा उनके विचित्र जीवन की कहानी]

लेखक
जगपति चतुर्वेदी
सहा० सम्पादक 'विज्ञान'
चित्रकार
हरिदास चटर्जी

किताब महल
इलाहाबाद

सस्ता साहित्य भंडार
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण, १९५४

लेखक की अन्य पुस्तकें

विलुप्त जन्तु	तत्वों की खोज में
बिजली की लीला	कीटाणुओं की कहानी
समुद्री जीव-जन्तु	शल्य-विज्ञान की कहानी
वनस्पति की कहानी	अद्भुत जन्तु
जीने के लिए	विलक्षण जन्तु
ज्वालामुखी	आविष्कारकों की कहानी
भूगर्भ विज्ञान	शिकारी पक्षी
पेनिसिलिन की कहानी	जलचर पक्षी
वैज्ञानिक आविष्कार भाग १, २	साधारण पक्षी
परमाणु के चमत्कार	उथले पानी के पक्षी
कोयले की कहानी	तारा-मंडल की कहानी
विलुप्त वनस्पति	धातुओं की कहानी

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७, जीरो रोड, इलाहाबाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग ....
पुस्तक क्रम संख्या ......
State Museum Library, Lucknow

दो शब्द

पुस्तक की विशेषता के सम्बन्ध में कुछ कहने की अपेक्षा पाठकों से हम कोई भी एक अध्याय पढ़कर इसकी उपयोगिता अनुभव करने की प्रार्थना करेंगे। जो चतुष्पद हैं, वे किस प्रकार उड़ते हैं, जो द्विपद पक्ष धारी होकर भी अपने पक्षी वंश का नाम सार्थक नहीं कर सकते उनके स्थल या जलजीवन का रूप क्यों हो सका है, अथवा अपना आहार प्राप्त करने के लिए जीवों के अथक प्रयास को हम कैसे विलक्षण रूप में चित्रण कर सकते हैं, इन प्रसंगों की चर्चा के साथ पुस्तक के कुछ अध्यायों में उनके गृहनिर्माण कौशल की चर्चाएँ हैं तो किसी में उनके अपना रूप छिपाकर दूसरों से बच निकलने या दूसरों पर धोखे से सहज आक्रमण करने की कथा है। जन्तुओं में दूसरे जन्तुओं के साथ बराबरी या पारस्परिक लाभ के सहजीवन की दृष्टि से भी छोटे बड़े जंतुओं में सहयोग की भावना के उदाहरण पाये जाते हैं किन्तु कुछ वर्ग ऐसे भी हैं जो दूसरों के विनाश की भित्ति पर ही अपना जीवन-दुर्ग निर्मित करते हैं। हमें आशा है कि इन सब मनोहर प्रसंगों का कुछ वर्णन सरल रूप में यहाँ देने का हमारा प्रयत्न पाठकों को रुचिकर ज्ञात होगा।

जगपति चतुर्वेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिम्पैंजी ६८

मारमोसेट ६६

लेमूर १००

टार्सियस १०३

६. नर जन्तुओं द्वारा शिशुपालन ... १०४

७. जन्तुओं में सहजीविता तथा परोपजीवीपन ... ११६

८. जन्तुओं की लुकाछिपी या रूपवंचकता ... १३०

६. उभयजीवी जन्तु १४३

565.7

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र सूची

पूर्ण पृष्ठ के चित्र

१—उड़ाकू गिरगिट (Flying Lizard)
२—उड़ाकू मेढक (Flying Frog)
३—उड़ाकू गिलहरी (Flying Squirrel)
४—केगुआन कोबेगो (Caguan or Cobego)
५—द्वारपाशीय मकड़ा (Trapdoor Spider)
६—श्याम भक्षक मत्स्य (Black Swallower Fish)
७—जल मकड़े का पानी के ऊपर घंटीनुमा घोंसला (Female Water Spider & Her Diving Bell Nest)
८—क्षुद्र बुन्दकित (Small Spotted Dogfish)
९—क्षुद्र उलूक का नागफनी के वृहद् काँटे में घोंसला (Little Elf Owl and Its Home)
१०—वाग्रीएास (धनेश) का घोंसला (Great Hornbill)
११—एकाकीजीवी बर्रे (ततैया) का घटनुमा घोंसला (Potter Wasp)
१२—टार्सियर (Tarsier)

अन्य चित्र

१—फैलेंजर (Phalanger) ... ६
२—चमगीदड़ (Bat) ... २०
३—डोडो (Dodo) ... २४
४—लघु पेंग्विन (Adelie Penguins) ... ३०
५—राजा पेंग्विन (King Penguin) ... ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६—शुतुर्मुर्ग (Ostrich) ... ३५
७—कीवी (Kiwi) ... ४०
८—उलूक शूक या ककापो (Kakapo or Owl Parrot) ४२
९—जलकाक का जलगर्भी अभियान (Cormorant) ५३
१०—घुग्घू प्रावार कर्ण उलूक (Great Horn Owl) ५६
११—केकड़ा (Crab) ... ६०
१२—धूम्रीय वन मंडूक (Smoky Jungle Frog) ६९
१३—ओरन ओटन (Orang Utan) ... ९१
१४—गिब्बन (Gibbon) ... ९४
१५—बैबून (Baboon) ... ९६
१६—मेंड्रिल बैबून (Mandrill Baboon) ९७
१७—मकड़ा बन्दर (Spider Monkey) ... ९७
१८—चिम्पैंजी (Chimpanzee) ... ९८
१९—मारमोसेट (Marmoset) ... ९९
२०—लेमूर (Lemur) ... १०१
२१—सन्तानपालक मेढक (Mid Wife Toad) ११३
२२—योगी केकड़ा (Hermit Crab) ... १२२
२३—चिपकन मछली (Remora) ... १२२
२४—चूषक प्याली (Sucking Cup) ... १२२
२५—चूषक प्याली युक्त सिर (Head With Sucking Cup) ... १२२
२६—अष्टपदी (Octopus) ... १३६
२७—गतिशील पत्रकीट (Walking Leaf Insect) १३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौपाए भी उड़ते हैं ?

चौपाए से हमारा मतलब गाय, भैंस, बैल आदि से नहीं है। चार पैर वाले जन्तुओं को चतुष्पद कहा जाता है। हमने सरल नाम के लिए चौपाए सम्बोधन को चुना। किन्तु इस शब्द से यहाँ चतुष्पद से ही तात्पर्य है। हमें आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का पता है। वे हमारे आश्चर्य की बात नहीं हैं क्योंकि हम उन्हें नित्य ही, दिन रात उड़ते पाते हैं। दिन को हमारे परिचित पखेरू जहाँ उड़ते रहकर अपना उदर भरकर सन्ध्या काल वृक्षों पर बसेरा लेने चले जाते हैं, वहाँ रात के अन्धकार का आगमन होते ही कुछ पक्षी अपने घोंसलों या कोटरों से बाहर निकल कर शिकार की खोज में उड़ना प्रारम्भ करते हमें दिखाई पड़ सकते हैं। इसमें उल्लू का नाम प्रसिद्ध ही है। परन्तु हमें यहाँ निशाचर या रजनी-चर या दिवाचर या दिन को ही उड़कर पेट भरने वाले पक्षियों की मीमांसा नहीं करनी है। हम तो कुछ ऐसे अद्भुत जन्तुओं को लेने का उद्योग कर रहे हैं जो अपने जाति-भेद के कारण चार पैर रख कर धरती पर या वृक्षों पर जीवनयापन करने वाले होने चाहिए, परन्तु कुछ विचित्र विधान से उन्हें उड़ने का सफल कार्य करने या उड़न का स्वांग या वायु में कुलांच मारने का प्रयत्न करते देखा जा सकता है। संसार के भिन्न-भिन्न प्रदेशों का पर्यटन करने वाले इन विचित्र दृश्यों को देखते हैं, किन्तु संसार देखने की उत्कट लालसा या सुदूर देशों की यात्रा कर सकने का साहस न रख सकने या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दैनिक जीवन में बँधे रहकर विश्व विहरण का अवसर न पा सकने वाले व्यक्ति, मनचले यात्रियों तथा लेखकों की लेखनी तथा तूलिका के करतब रूप में विचित्र पदार्थों का मनोहारी वर्णन तथा आकर्षण चित्रांकण हृदयंगम कर ही सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु हम अपनी आँखों से उन्हें देख सकें या न देख सकें, उन पदार्थों तथा जंतुओं की विचित्रता तथा मनोहारिता तनिक भी न्यून नहीं होती। हम लोग स्थल पर चलने वाले जीव हैं, इसलिए जल या आकाश में अपनी पहुँच होने के आनन्द का अनुभव कर सकते हैं, परन्तु जीवों में ऐसे आनन्द का अनुभव करने की प्रवृत्ति हो सकती है या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु दैनिक आवश्यकता या भय तथा आशंका से अपनी प्राण-रक्षा के साधन के लिए आकाश में उड़ने की प्रवृत्ति कुछ जन्तुओं में देखी जाती है जो पक्षी वंश के नहीं हैं। जो आक्रामक प्रबल हैं, किन्तु स्थल-वासी हैं, उनसे रक्षा पाने के लिए उड़ सकने की थोड़ी वृत्ति भी कितनी अधिक सहायक हो सकती है परन्तु इसके विपरीत आखेट की खोज के लिए स्थल खंड से ही सन्तोष न कर, आकाश में भी पहुँच हो सकने से कीड़े, पतिंगों आदि को प्राप्त कर सकने की सुविधा बड़ी स्पृहणीय हो सकती है।

इन परिस्थितियों में उड़ने की आकांक्षा रखने वाले चतुष्पदों में हम कितने ही जन्तुओं का नाम ले सकते हैं। हम पक्षियों में डैने को ऊपर और नीचे मार करने से उड़ने की यथार्थ क्रिया होती देखते हैं। पक्षियों की मांस पेशियाँ अपने बल से उड़ाकू जीवन को सफल बनाती हैं। परन्तु बहुत से ऐसे जन्तु हैं जिनमें न तो इस तरह की प्रबल वेगशील माँस-पेशियाँ ही होती हैं और न यथार्थ रूप के डैने ही उनमें होते हैं, फिर भी वे अपने जीवन को उड़ाकू रूप देने में कुछ कारणों या साधनों से समर्थ पाये जाते हैं। इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए हमें सर्प के फन का आकार-प्रकार देखना चाहिये। सर्प का मुँह तो साधारण अवस्था में गोल और अन्य भाग के शरीर की मुटाई के बराबर ही होता है। भागते हुए सर्प में सारा अंग लम्बी लाठी की तरह प्रतीत होगा जो पूँछ की ओर कुछ पतला होता है। किन्तु गेंडुरी मार कर बैठने या उत्तेजित होने पर वही सर्प अपने मुख के नीचे के भाग या कपोल को फैलाकर दोनों ओर चपटा भाग निकाल देता है। इसे ही सर्प का फन कहा जाता है। गोल भाग ही उसकी इच्छा से पतला तथा चपटा बन गया होता है।

साँप के फन की तरह अपने पेट या अंगों का पार्श्व भागों में दोनों ओर पतली चपटी कोई छतरी या चकत्ती सी बनाकर चतुष्पद भी पक्षी के अनुकरण में डैने बना सकते हैं। वे अपनी मांस-पेशियों में इतनी शक्ति नहीं रखते कि पक्षी के डैने की भाँति ऊपर तथा नीचे की ओर फैली, अपने अंग की चकत्तीनुमा झिल्ली या चमड़ी को फटफटा सकें, किन्तु किसी ऊँचाई से छलाङ्ग मारने पर वे उन बढ़ी हुई झिल्लियों से आकाश-छतरी (पैरेशूट) का काम तो ले ही सकते हैं। ऐसी आंशिक रूप की उड़ान उड़ाकू कुदान (ग्लाइड) कही जा सकती है। ऐसी ही उड़ाकू कुदान की व्यवस्था कितने ही चतुष्पदों में पाई जा सकती है जिसे उड़ान का ही अनुकरण कह सकते हैं। अतएव ऐसी उड़ाकू कुदान करने वाले जंतुओं को उड़ाकू विशेषण से विभूषित किया जा सकता है। उड़ाकू मछली, उड़ाकू गोधिका (गिरगिट), उड़ाकू मंडूक (मेढक), उड़ाकू गिलहरी आदि नाम इन उड़ाकू जन्तुओं में आ सकते हैं।

उड़ाकू गोधिका (गिरगिट)

सरीसृप वर्ग के जन्तुओं में एक गिरगिट का ही नाम उड़ाकू वर्ग में कहीं-कहीं पाया जाता है। इसका चमकीला रंग होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह अपने शरीर के दोनों ओर शिथिल रूप की चमड़ी की परत रखता है जिसे साधारणतया अपने शरीर से साँप के पिचके गोल मुँह की तरह ही सिकुड़ा रखता है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसी प्रकार फैलाकर चपटी परत दोनों ओर कर लेता है जैसे नाग अपने फन को फैलाकर चपटा रूप बना देता है। उड़ाकू गिरगिट की पसलियाँ लम्बी होती हैं। उनके आधार पर वह अपनी पार्श्व भाग की दोनों ओर की चमड़ी की परतों को छतरी की भाँति तानकर फैला लेता है। ऐसे जन्तु एशिया के उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। जब उड़ाकू कुदान भरने का काम निकल जाता है तो यह पार्श्ववर्ती चमड़ी सिकोड़ लेता है।

उड़ाकू गिरगिटों में बड़े से बड़े आकार के गिरगिट लगभग पन्द्रह इंच लम्बे होते होंगे। वे वृक्षों पर ही जीवनयापन करते हैं तथा अपनी पार्श्ववर्ती चमड़ी की परतों को उभाड़-उभाड़कर इस डाल से उस डाल तथा इस वृक्ष से उस वृक्ष तक भी उड़ाकू कुदान भरकर पहुँचते ही रहते हैं। उनका उद्देश्य भारी वायुयात्रा करना नहीं होता, प्रत्युत छोटे-मोटे पतिंगों या तितलियों को पकड़ कर अपनी उदर-पूर्ति करना ही होता है। हमारे लिए यह उद्देश्य महा अधम ही ज्ञात हो सकता है, परन्तु हम अपनी बुद्धि और शक्ति के मापदंड से न देखें तथा अपनी बड़ी आवश्यकताओं की बात भुला दें तो एक साधारण जन्तु की बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार यह साधारण उद्योग भी पराक्रम तथा कौशल का नाम पा सकता है। जन्तुओं की तो एकमात्र गहन समस्या उदरपूर्ति ही होती है। उसके लिए वे क्या कुछ करते नहीं दिखाई पड़ते। जो शाकाहारी हैं वे तो अपेक्षाकृत हीन साधनों से भी सम्पन्न रहकर मन्दगति से अपना जीवन-कार्य चलाते रहते हैं। उनके पास कुछ विशेष साधन होते हैं तो वे केवल मक्खियाँ उड़ा सकने के लिए दुम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिलाने या सिर झटक कर सींग मारने का भय दिखाने तक ही सीमित होते है। किन्तु जो हिंसक हैं, मांसाहारी हैं, वे अधिक चपल गति तथा तीक्ष्ण अस्त्रों से संयुक्त होते हैं। उनके आखेट के जन्तु भी भाग सकने का उद्योग कर सकते हैं, इसलिए द्रुतवेग से उन्हें पकड़ सकने की शक्ति रखनी पड़ती है। अतएव तीक्ष्ण चंगुलों, पैने या विषाक्त दाँतों या अन्य अस्त्रों के साथ तीव्र वेग से दौड़ने की क्षमता भी भारी सहायक होती है। अतएव उड़ाकू गिरगिट की थोड़ी दूर तक उड़ाकू कुदान भर सकने की शक्ति उसके जीवन युद्ध की एक भारी निधि है।

जब कोई उड़ाकू गिरगिट अपनी भूख शान्त करने की चिन्ता में आतुर हो और उसे कोई तितली उड़ती दिखाई पड़ जाय तो एक डाल से उड़ाकू कुदान भरकर दूसरी डाल या एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक पहुँच जाने का उद्यम कर मार्ग में उड़ती इस तितली को पकड़कर वह कितने अपार हर्ष का अनुभव कर सकता है अथवा अपनी शक्ति का कितना गर्व कर सकता है। इसे हम किसी साधारण गिरगिट या छिपकली की दृष्टि से देखने का प्रयत्न करें तो भली-भाँति अनुभव कर सकते हैं।

उड़ाकू मंडूक (मेंढक)

दूसरों के देखादेखी मंडूकी को जुकाम होने की कटूक्ति बहुत ही प्रसिद्ध है, परन्तु देखा ही देखी कहीं मंडूकी को उड़ान भरने की सफलता पाने का गर्व करते देखा जा सके तो यह एक अद्‌भुत बात ही होगी, परन्तु हमारे विचित्र संसार में ऐसे अद्‌भुत मंडूक पाये जाते हैं जो उड़ाकू कुदान भरकर हमें उड़ान भ्रम कराने का प्रयत्न कर सकते हैं। इनको हम उड़ाकू मंडूक कह सकते हैं।

कुछ मेंढक विचित्र रूप के होते हैं। मूर्खता की कथाओं में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब प्रश्नोत्तर रूप में कहा जा जाता है कि तालाब में आग लगे तो मछलियाँ कहाँ जायँ तो उसका इस प्रश्न की ही तरह बेतुका उत्तर दिया जाता है कि वे वृक्षों पर चढ़ जायँ। इस उत्तर का भी उपहास करने के लिए कहा जाता है कि क्या मछलियाँ चौपाए हैं जो वृक्षों पर चढ़ जायँ। परन्तु इन सब उपहास की बातों का सत्य रूप हमें ऐसे मेढकों के रूप में मिलता है जो वृक्ष पर चढ़ सकते हों। तालाब में आग लगने की बात हम सत्य होने की बात नहीं सोच सकते, परन्तु चतुष्पद रूप में जलजीवी मेढक को वृक्ष पर चढ़ते देखना भी कुछ कम विस्मय की बात नहीं कही जा सकती। वृक्षारोही मंडूक एक जीवित रूप के ही जन्तु हैं जिन्हें हम अपनी आँखों देख सकते हैं।

उड़ाकू मेढक को वृक्षारोही बनाने वाली विशेषता अधूरी या कृत्रिम नहीं कही जा सकती। हम लोग स्वभाव से वृक्षारोही नहीं हैं, परन्तु अपने हाथ की उँगलियों से वृक्ष के तने तथा शाखाओं को बड़ी सावधानी से पकड़ कर वृक्ष पर चढ़ सकते हैं। बन्दर, बन-मानुष आदि अपने पंजों को अवलम्ब बनाकर शीघ्र ऊँची-ऊँची डालों तक पहुँच जाते हैं, परन्तु उड़ाकू मेढक में एक विचित्र ही प्रबन्ध होता है। हम वायु के दबाव की बात जानते हैं। जहाँ वायु न हो वहाँ पहुँचने का प्रयत्न कर वायु अपना दबाव डालती है। अतएव कृत्रिम रूप से वायुशून्य (वैकुअम) स्थल बनाने पर हवा का दबाव तुरन्त पड़ते देखा जा सकता है। मान लीजिये कोई गोल प्याली है जिसमें से वायु निकाल ली गई है और वह किसी ऐसे तल से चिपकी है जिसके ऊपर वायु का प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिए कटोरी उस तल से चिपटी पड़ी रह सकती है। इस तरह की चिपकन प्याली कुछ जन्तुओं के विशेष अंगों में होती है जिससे वे अपने अंग को किसी तल से बिल्कुल चिपकाये रख सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये जन्तु अपनी नर्म चमड़ी की गोल चकत्ती किसी अंग में लगी होने पर जब उसके बीच के अंश को ऊपर उठाने या सिकोड़ लेने का प्रयत्न करते हैं तो उस चकत्ती या गोल गद्दी के किनारे तो किसी पदार्थ या तल से बिल्कुल सटे रहते हैं किन्तु बीच का भाग समेट लिये जाने या सिकोड़े जाने से उस पदार्थ के तल तथा अपने केन्द्रीय भाग के मध्य वायुशून्य स्थल बना लेते हैं। अब यह चकत्ती बड़ी दृढ़ता से किसी पदार्थ के तल से चिपकी रह सकती है। इस व्यवस्था को चिपकन प्याली या चूषक प्याली कहा जा सकता है। इस वायुशून्य व्यवस्था से बलपूर्वक कोई वस्तु पकड़े रहने का काम लिया जा सकता है।

उड़ाकू मेढक अपनी उँगलियों तथा अँगूठों के छोरों पर चूषक प्यालियाँ विकसित कर सकने में समर्थ हो सके हैं। इन चूषक या चिपकन प्यालियों से वे वृक्ष के सपाट तने या शाखों से चिपकने का बड़ा प्रबल साधन प्राप्त कर लेते हैं। अतएव उन्हें वृक्षों पर चढ़ जाने या शाखों या कोटरों में पहुँचने में कोई भी अड़चन नहीं होती। उनकी इस शक्ति से वृक्ष पर चढ़ सकने का गुण तो उन्हें शत्रुओं से बहुत कुछ रक्षित रखता जान पड़ सकता है। परन्तु जीवन युद्ध तो सब ओर अपनी लीला दिखाता है। मेढक का एक मुख्य शत्रु सर्प होता है। उसके ऐसे प्रकार मिलते हैं जो वृक्षों पर सहज ही पहुँच कर वहाँ से अपनी 'कालवाहिनी जीभ लपलपाते हुए फनों को दूर तक ही नहीं पहुँचा पाते, बल्कि वे सारा शरीर अधर में फेंक सकने में समर्थ जान पड़ते हैं। इसके लिए वे उड़ाकू कुदान की तरह कुछ अभिनय करते दिखायी पड़ते हैं। उनकी धड़ का अधो भाग नतोदर (भीतर की ओर पिचका) होकर उदर के छिछड़ों को भीतर कर लेता है। इसलिए वे लम्बी छतरी-सी शक्ल बनाकर वायु के दबाव से कुछ हल्के बनकर हवाई छतरी की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीचे उतर पड़ते हैं और आखेट को हाथ में करने का प्रयत्न करते हैं। यह वृक्षारोही सर्प मेढकों का ऐसा शत्रु होता है जो वृक्ष पर भी उनका पीछा करता है। मालूम पड़ता है कि ऐसे शत्रु से प्राण रक्षा के लिए ही वृक्षारोही मेढकों को केवल चिपकन प्यालियाँ ही उँगलियों के छोर पर रखने से सन्तोष न हो सका, बल्कि वे उड़ कर भाग सकने की भी शक्ति का विकास करने के लिए विवश हुए।

उड़ाकू मेढकों के प्राण-रक्षा के साधन रूप में कबूतरबाजी अद्भुत बात है। जावा के उड़ाकू मेढकों में उड़ने की विचित्र विधि विकसित पाई जाती है। इनके अगले तथा पिछले पैरों की उँगलियाँ झिल्लियों द्वारा मिलकर चपटा तल बनाकर बत्तख के पैरों का नमूना उपस्थित करती हैं। यह मेढक चितकबरा होता है जिसमें हरे शरीर पर काले धब्बे बने होते हैं। यह यथेष्ट दूर तक उड़ाकू कुदान भर सकता है। दक्षिणी भारत में उड़ाकू मेढक को एक वृक्ष की ऊँचाई से चालीस फीट की दूरी के स्थल तक उड़ाकू कुदान भरकर तिरछे रूप में पहुँचने का उल्लेख पाया जाता है। एक खोजी ने इतनी कुशलता का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। इसकी उड़ाकू कुदान तो इतनी क्षिप्र गति से हुई कि उसे पक्षी होने का ही पूर्ण विश्वास किया गया, परन्तु निकट जाने पर वह उड़ाकू मेढक सिद्ध हुआ।

उड़ाकू फैलेंजर

उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों के सघन वनों में विचित्र जन्तुओं का दर्शन किया जा सकता है। उनमें कितने ही चतुष्पद उड़ाकू कुदान भरने वाले मिलते हैं। उनके साधनों में मुख्य रूप उदर के दोनों पार्श्व की दुहरी चमड़ी या झिल्ली कही जा सकती है। उसे उड़ाकू पार्श्व झिल्ली कहा जा सकता है। फैलेंजर नाम का जंतु इसी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का साधन रखे पाया जाता है। घने जंगलों में अनेक जन्तुओं को वृक्षों तथा शाखाओं पर ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देने का अवसर उसी प्रकार देख सकते हैं जैसे हमलोगों में से बहुतेरे स्थल पर ही सारा जीवन व्यतीत कर ले जाते हैं। इन जन्तुओं को वृक्षों की डालों, कोटरों तथा पत्तियों की दुनियाँ में ही जन्म धारण करने तथा अपनी वय समाप्त कर मृत हो जाने का अवसर हो सकता है। इन्हें वृक्षजीवी ही कहा जा सकता है। इन्हें कदाचित् ही कभी स्थल पर नीचे उतरने का अवसर आता हो।

ऐसे ही वृक्षजीवी जन्तुओं में कुछ दुग्धपायी जन्तु भी होते हैं जिनमें फैलेंजर की गिनती की जा सकती है। ये चौपाये कंगारू की जाति के हैं। ये कंगारू की तरह ही न तो अंडज श्रेणी में हैं और न पूर्णतः पिंडज या स्तनपायी ही कहे जा सकते हैं। इनके बच्चे बहुत छोटे उत्पन्न होकर बहुत दिनों तक अपनी माता की एक विशेष थैली में पड़े रह कर पलते हैं। अतएव इनको मध्यजीवी श्रेणी का जन्तु कहा जा सकता है। इनकी जातियाँ आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में पाई जाती हैं। इनके भिन्न-भिन्न रूप के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्ग माने जाते हैं। इनमें कुछ फैलेंजर तो उड़ाकू झिल्लियाँयुक्त होते और कुछ इस व्यवस्था से रहित ही होते हैं।

फैलेंजर

फैलेंजर की घने रोमोंयुक्त मोटी आकर्षक चमड़ीयुक्त जाति का उड़ाकू रूप बड़ा ही मनोहर होता है। इनमें क्षुद्रभाल फैलेंजर केवल पन्द्रह इंच लम्बा होता होगा जिसके साथ आठ इंच की दुम भी होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्यूगिनी में यह सर्वत्र पाया जाता है। आस्ट्रेलिया में भी इसकी कुछ जातियाँ हैं। ये रजनीचर वृत्ति के ही होते हैं। इनका मुख्य भोजन फल तथा कीड़े पतिंगे हैं। उड़ाकू फैलेंजर अपने शरीर का फननुमा फैलाव अगले पैर की कलाई से लेकर पिछले पैर के टखने तक कर सकता है। उधर दुम भी पंख की तरह बनी होती है। अतएव वह इन साधनों से दूर तक उड़ाकू कुदान भर सकता है। इसे ४० फीट पाट की नदी ३० फीट ऊँचे टीले से छलांग मारकर पार करते देखा गया है। यह दिन को तो पत्तियों की ओट में छिपा ही पड़ा रहता है, परन्तु रात होते ही एक डाल से दूसरी डाल या एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक उड़ाकू कुदान भरते आखेट की खोज में दौड़-धूप करते पाया जाता है। बच्चे थैली में रहते हैं। अधिक बड़े होने पर थैली से निकल कर बालों में चिपटकर ही साथ उड़ाकू कुदान का आनन्द लेते हैं।

उड़ाकू गिलहरी

गिलहरी कितना सरल जीव है, परन्तु उसे भी कहीं अपना जीवन सङ्कट या असुविधाओं से भरा होने पर उड़ने का दम भरने के लिए विवश होना पड़ा होगा। इसी कारण हम उड़ाकू गिलहरी का नाम सुनकर आश्चर्य करते हैं। वास्तव में ऐसी गिलहरियाँ पाई जाती हैं जो उड़ने का दृश्य दिखाती हैं। इनमें भी उड़ाकू कुदान भरने की वही व्यवस्था होती है जो फैलेंजर में पाई जाती है, परंतु ये जन्तु उस वंश से कोई भी संबंध नहीं रखते। ये कुतर कर खाने वाले चूहे, खरगोश आदि के वंश के कहे जा सकते हैं।

उड़ाकू गिलहरी का वंश उत्तरी अमेरिका, पूर्वी यूरोप तथा एशिया में पाया जाता है जिसकी उड़ाकू झिल्ली सामने की ओर एक उपास्थि से अवलम्बित होती है जो कलाई से संबंधित होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफ्रीका में एक दूसरे रूप की उड़ाकू गिलहरी होती है जिसकी उड़ाकू झिल्ली कलाई के स्थान पर केहुनी से संबंधित उपास्थि (नर्म हड्डी के एक दंड से अवलंबित होती है। इसे सर्वथा पृथक् वंश ही माना जा सकता है।

उड़ाकू गिलहरी भी रजनीचर वृत्ति की होती है जो रात को ही भोजन की खोज में निकलती तथा दिन भर छिपी सोती रहती है। दिन के समय यह या तो पेड़ के बिल्कुल ऊपरी भागों में छिपी पड़ी रहती है अथवा कहीं कोटरों में ही पड़ी समय बिताती रह सकती है। निशाचर या रात को ही जगने की वृत्ति होने का कारण इसका दर्शन या ज्ञान विरले लोगों को ही होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उल्लू की वृत्ति वाले जन्तुओं का समुदाय कुछ छोटा नहीं है। केवल उनकी जानकारी हमें नहीं है।

रात्रिजीवी होने के कारण उड़ाकू गिलहरियों का स्वाभाविक अवस्था में अध्ययन करने का बहुत कम अवसर ही मिल सकता है परंतु उसे जन्तुशालाओं में पाले रूप में रखकर अध्ययन करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सका है। एक उड़ाकू गिलहरी को ५० गज की दूरी उड़ाकू कुदान से पार करने का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सका है। अपनी उड़ाकू कुदान के लिए वे कोई ऊँचा स्थल ढूढ़ती हैं। फिर वहाँ से उड़न कुलाँचें मार कर अभीप्सित स्थल पर दूर जा पहुँचती हैं। अपने हाथ-पैर फैलाकर वे छतरी का ही नमूना उपस्थित करती हैं। अपने फननुमा फैलाए कलेवर को साधकर उड़न कुलाँच भरने के लिए वे नियन्त्रण के लिए अपनी भुजाओं को ऊपर तथा नीचे गिरा और उठाकर चपटे कलेवर को पक्षियों के डैनों की भाँति फटफटाने का उद्यम करती हैं। दुम से वे शरीर साधने का तथा शरीर को ऊपर की ओर उठाने का कार्य लेती हैं।

उत्तरी अमेरिका की उड़ाकू गिलहरी का सिर तथा धड़ कुल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाँच इञ्च ही लम्बा होता है। दुम भी चार इञ्च लम्बी साथ ही लगी होती है। कुल शरीर का बोझ आध पाव से भी कम ही होता है। इसका अधोभाग गिलहरियों की तरह श्वेत होता है परन्तु ऊपरी भाग धूसर रंग के सुन्दर रोमयुक्त होता है। आँख यथेष्ट बड़ी होती है तथा दुम चपटी होती है।

उड़ाकू गिलहरी की मूँछें बड़ी संवेदनशील बताई जाती हैं। उनको फैलाए रखकर वे अंधेरे में आँखों का काम लेती हैं। अदृश्य वस्तु से अंधेरे में छू जाते ही वे खटके की सूचना दे देती हैं। इनके हाथ पैर दृढ़ होते हैं कि केवल एक उँगली या अँगूठे से ही डाल पकड़े सँभली रह सकती हैं। इनकी उड़ान एक विचित्र दृश्य ही है।

केगुआन या उड़ाकू लेमूर

सभी जन्तुओं से निराला तथा विचित्र केगुआन या कोवेगो नाम का जंतु अपना कोई सानी नहीं रखता। उसका किसी भी अन्य वंश के जन्तुओं के कोई संबंध नहीं पाया जाता। उसे अनोखा, विरला वंश ही निर्मित रखते पाया जाता है। इसका मुख नोकीला, पैर नन्हें तथा दुम लंबी होती है। रोमाच्छादित झिल्ली गर्दन से लेकर अगले पैर के अँगूठों तक तथा कलाई से लेकर पीछे के पैर के टखनों तक फैली होती है। उँगलियाँ तथा अँगूठों का झिल्लियों की चादर से बत्तख के पैरों के समान संयोग होता है। दुम की छोर भी झिल्ली की चादर से पैर के अँगूठों तक संबद्ध रहती है।

केगुआन जन्तु की उड़ाकू झिल्ली अत्यधिक विकसित होती है। वह उड़ाकू गिलहरी से अपेक्षाकृत बहुत अधिक संतोषजनक होती है। किन्तु इसकी पेशियाँ धोखा दे जाती हैं। वे इस फैली झिल्ली के पट को डैने की भाँति फटफटा सकने में समर्थ नहीं होतीं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्यथा यह जन्तु भी चमगीदड़ की भाँति झिल्लियों के डैनेनुमा पट से भली-भाँति बराबर उड़ता रहकर अपना नाम पक्षियों की श्रेणी में ही लिखा देता और हम इसके चतुष्पद होने की बात अकस्मात न समझ पाते। किन्तु अपनी विस्तृत तथा प्रबल झिल्ली के पट से हमें कैगुआन को सत्तर गज तक की दूरी तक उड़ाकू कुदान भरने का दृश्य देखने को मिल सकता है।

इसको कोलुगो भी नाम दिया गया है इसकी लंबाई सिर से लेकर दुम की छोर तक तीन फुट पाई जाती है। इसके दोनों पार्श्व भाग में परिवर्द्धित झिल्लियाँ होती हैं जो पूर्ण प्रसारित होने पर लगभग इतनी ही फैल जाती हैं। चमगीदड़ों के चर्मपक्ष या उड़ने की झिल्लियों की तरह ये नग्न नहीं होतीं, प्रत्युत उन पर रोम उगे होते हैं। इस प्रकार शरीर के अन्य भागों के समान ही उन झिल्लियों के भाग का भी रूप होता है। वे पैरों तक फैली होती हैं। पिछले पैरों से लेकर दुम को छोर तक भी यह झिल्ली बढ़ी पाई जाती है। इस प्रकार इस झिल्ली का समस्त शरीर के ऊपर ओढ़नी की भाँति आच्छादित पाया जाता है। इस विचित्र जन्तु को लोग उड़ती बिल्ली भी कहकर पुकारते थे। यह पूर्वी द्वीप समूह में रहने वाला जन्तु है। यह साधारण लेमूरों की भाँति ही वनों में रहता है। कदाचित् रात को चमगीदड़ की तरह पंख फटफटा कर उड़ता-फिरता भी देखा जाता है। इसका रंग धूसर होता है जिसमें रक्तिम भूरे रंग का हल्का मेल होता है।

उड़ते लेमूर की यह विशेषता है कि ऊपरी जबड़े में सामने के दाँत (कर्तनक) नहीं होते, किन्तु निचले जबड़े में छः चौड़े, छोटे तथा स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् बने दाँत होते हैं। वे सिरे पर गहरे गड्ढेयुक्त होते हैं। यह उड़ाकू गिलहरी तथा चमगीदड़ के मध्य का जन्तु जान पड़ता है। इसे लेमूर, उड़ाकू गिलहरी तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चमगीदड़ों के विकास-क्रम में एक संबंधित लड़ी रूप में माना जा सकता है। इन सब की निकटवर्ती जातियों के जन्तु अनुमान किया जाता है। इस कारण विद्वानों के विचार में उड़ते लेमूर (या उड़ती बिल्ली) के प्राचीन प्रस्तरावशेषों से जीवों के उत्पन्न तथा विकास की कथा समझने में कुछ सहायता प्राप्त होती है।

उड़ाकू लेमूर कीटभक्षी जन्तु है। यह हवा में कुदान की उड़ान करने में प्रवीण है। एक उड़ाकू कुदान में ७० गज दूर जा पहुँचता है। इसमें प्रति पाँच गज की दूरी पर वह केवल एक गज नीचे गिरता है। इसके चारों पैर की उँगलियाँ झिल्ली से संलग्न होती हैं। वह झिल्ली इसके शरीर के पार्श्व भाग के छोरों तक फैली झिल्ली से संयुक्त होती है। सोते समय यह जन्तु वृक्ष की डाल से उलटे लटका पड़ा रहता है। इसके वक्षस्थल में दो स्तन होते हैं। यह केवल एक शिशु एक बार में जनन करता है।

उड़ाकू लेमूर या केगुआन रात्रिजीवी जन्तु है। यह रात भर उछल-कूद करता, आखेट की टोह में रहता तथा दिन को सोता पड़ा रहता है। उड़ाकू स्तनपायी जन्तुओं को हम आवश्यकतावश उड़ान के चक्कर में पड़ा पाते हैं अतएव वे सब अपनी कृत्रिम अर्जित उड़ान शक्ति का उपयोग कदाचित् रात के अंधकार में ही अधिक कर सकने में समर्थ होते हैं। अतएव उन सबको रात्रि-जीवी पाया जाता है। केगुआन भी ऐसा ही जीव है। दिन को पत्तों के सदृश अपने रोम के रंग से छिपा पड़ा रहता है। वह किसी वृक्ष से चिपटा या डाल से उलटे लटके ही दिन काटता है। रात को यह फल तथा पत्ते खाकर जीता है। यह मलाया प्रायद्वीप, स्याम, फिलीपाइन, बोर्नियो और जावा आदि में पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चमगीदड़

चमगीदड़ को हम रात को उड़ते देखते हैं, अतएव उल्लू की तरह कोई रात्रिजीवी पक्षी समझ कर चुप लगा जाते हैं। यह हमारे विस्मय का कारण नहीं होता। परन्तु जीव जन्तुओं का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का ध्यान जब इस पक्षी नामधारी जन्तु की ओर जाता है, तो वे आश्चर्य करते हैं। यह बात प्राचीन समय से भी लोगों के ध्यान में आती रही है कि चमगीदड़ पक्षी समुदाय का नहीं है। इसीलिए पक्षियों तथा स्थलजीवियों के संघर्ष की कहानी गढ़कर चमगीदड़ को कभी पक्षी और कभी स्थलजीवी जन्तुओं के दल में सम्मिलित होने की बात कही जाती है। लोगों की कल्पना ने चमगीदड़ के रात को उड़ने का कारण यह अनुमान करने के लिए विवश किया कि दोनों पक्षों में मिलने से ईमानदारी का अभाव रखने पर यह पक्षी तथा स्थलजीवी जन्तुओं, दोनों से परित्यक्त हो गया। इसलिए लज्जित होकर इसने चुपके से रात को निकलना ही प्रारंभ किया। परंतु यह लोक-कथा चमगीदड़ के विचित्र स्वभाव के कारण ही गढ़ी प्रतीत होती है। हम यह जानते हैं कि चमगीदड़ अंडज नहीं है तथा द्विपाद भी नहीं है। वह तो माता के गर्भ से सदेह उत्पन्न होने के कारण पिंडज या स्तनपायी वर्ग में स्थान पाता है, परन्तु जीवन की आवश्यकता ने उसे अपने क्षुद्र तथा दुर्बल शरीर के कारण रक्षा के लिए दिन को छिपे रहने का गुण प्राप्त किया तथा अपने चंगुलों तथा अंगूठों से छाते की कड़ी के समान अवलंब देकर झिल्ली की चादर का डैना बना लिया किन्तु वह केवल उड़ाकू कुदान से ही संतोष न कर सका। उसकी झिल्लियाँ इतनी अधिक विकसित बनीं कि उनका छाते के तने पर्दे की भाँति स्थायी फैला रूप बना जिसे वह समेटकर बदन से चिपका रख सकता। साथ ही मांसपेशियाँ इतनी विकसित हुईं कि वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस झिल्लीनुमा डैने को फटफटा कर उसे पूर्ण व्योमचारी बनाने तथा पक्षी वर्ग में नाम लिखा सकने में समर्थ बना सकीं। अतएव हम उसके आज दो पैर ही देखते हैं जिनके चंगुलों से वह डालों या छतों से उलटे टंगे पड़ा रहता है, परंतु शेष दो पैर झिल्लियों के पट में मिलकर लुप्त-से हो गए हैं। उनके रूप अब डैने की शिरा रूप में हैं जिनके छोरों पर नख अब भी निकले रहते हैं।

चमगीदड़ छोटी तथा बड़ी दो जातियों के होते हैं। परंतु इस चतुष्पद की कोई ऐसी जाति नहीं जो अपनी ऐसी अवस्था बतलाती हो जिसमें झिल्लियों के डैने का विकास न हो सका है। इनको उड़ाकू चतुष्पद के स्थान पर पक्षी कहने में कुछ भी संकोच का अनुभव नहीं किया जाता। किंतु इस जंतु ने यथार्थ में जितनी अधिक सफलता उड़ानविद्या ग्रहण करने में दिखाई है उतना कोई भी अन्य उड़ाकू चतुष्पद नहीं पा सका।

चमगीदड़ के डैने हमारी उँगलियों से संलग्न पृथक्-पृथक् हड्डियों से बनी हथेली का नमूना इस प्रकार रखते हैं जिसके मध्य अधिक पतली झिल्लियाँ हड्डियों रूप की तीलियों के मध्य में हों। ये तीलियाँ छाते की कड़ी के समान लंबोतरी हड्डियों से बनी होती हैं जो झिल्ली के भीतर ही मढ़ी होती हैं। अगले पैर से उँगलियाँ या हथेली की इन हड्डियों रूप की तीलियों के अवलम्ब से रबड़नुमा झिल्ली की बड़ी पट्टी बनी होती है जिनमें अँगूठा भाग नहीं लेता। वह ऊपरी छोर पर एक ओर निकला पड़ा रहता है। यह झिल्ली-नुमा पट्टी पीछे तक फैली रहकर पिछले पैरों से जा मिली होती है। पिछले पैरों को स्वतन्त्र तथा लंबे चंगुलोंमय देखा जाता है जिनसे वे डालें पकड़कर दिन को उलटे लटक सकते हैं। चमगीदड़ की छाती बड़ी और पुष्ट होती है। उसकी दृढ़ मांसपेशियाँ अगले पैर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या भुजा को हिला-डुला सकती हैं। उसी के बल पर झिल्ली की लंबी पट्टी भी फटफटा कर उड़ने में सहायक होती है।

बड़े चमगीदड़ों की जाति फलभक्षी कहलाती है। उनमें से किसी-किसी के डैनों का फैलाव पाँच फीट तक होता है। भारत, मलाया तथा आस्ट्रेलिया के फलभक्षी चमगीदड़ों की यह विशेषता है कि उनके कान बहुत ही छोटे होते हैं। उनका मुख बिल्कुल लोमड़ी-सा ही होता है। अतएव कभी-कभी उसे उड़ाकू लोमड़ी भी नाम दे दिया जाता है।

चमगीदड़ प्रायः दो शिशु एक बार में उत्पन्न करते हैं। वे अपने शिशुओं को अधिक समय तक दूध पिलाते हैं। शिशु उत्पन्न होते ही माता के स्तन से दृढ़तापूर्वक जा चिपकता है जहाँ से उसे छुड़ा सकना कठिन होता है। ऐसी अवस्था में माता दोनों शिशुओं को स्तन से चिपकाए ही उड़ती भी पायी जाती है। यथेष्ट बड़े हो जाने पर भी शिशुओं को उसे स्तन से चिपकाये रखकर मादा उड़ती मिलती है।

छोटी जाति के चमगीदड़ कीटभक्षी होते हैं। कीड़ों, पतिंगों को वे उड़ते रहते ही पकड़ते हैं। इसके लिए वे अपना मुँह उड़ते समय खुला ही रखते हैं। कीटभक्षी चमगीदड़ों का जीवन युद्ध विकट होने से फलभक्षी चमगीदड़ों से तीव्रगामी वेग होता है। पूर्ण उड़ान में एक सेकंड में १५ बार पंख फटफटाने में वे समर्थ होते हैं।

हम बेतार के तार का विज्ञान विशेष विकसित हो सकने पर कुछ दूर की अदृश्य ठोस वस्तु का ज्ञान केवल विद्युत-लहरें फेंककर अनुभव कर सकते तथा उसकी दूरी तथा दिशा जान सकते हैं। इसे रैडर यंत्र कर दिखाता है। चमगीदड़ अपनी आंतरिक शक्ति से ही यह कार्य कर दिखाता है। वह कुछ ध्वनि ऐसी उत्पन्न कर सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है जो हमारी श्रवणेन्द्रियों की ग्रहण शक्ति से परे की बात होती है। वही ध्वनि किसी अन्य वस्तु से टकराकर प्रतिध्वनि रूप में उसे फिर सुनाई पड़ती है। उस प्रतिध्वनि से ही वह घोर अंधकार में कहीं पड़ी ठोस वस्तु का पता पाकर उससे बचकर उड़ता रह सकता है। उत्तरी अमेरिका में यह परीक्षण कर देखा गया है कि नेत्र बंद करने पर अपने श्रवणेन्द्रिय की प्रतिध्वनि-ग्राहक शक्ति से मार्ग की बाधाएँ ज्ञात करने में चमगीदड़ सफल पाया जाता है। परन्तु कान और मुँह बंद रक्खे जायँ तो वह उड़ते समय उड़ान मार्ग की बाधाओं से टकराने से बचने में सर्वथा असमर्थ होता है। यह प्राकृतिक रैडर का एक अनुपम उदाहरण ही कहा जा सकता है। यही कारण है कि रात के अंधकार में बार-बार चक्कर मारकर उड़ते चमगीदड़ को संकीर्ण स्थल में भी किसी वस्तु से टकराने का अवसर नहीं होता और वे सफलतापूर्वक बाधाओं से बचकर उड़ते रहते हैं।

एक चमगीदड़ रक्तपिपासु होता है जिसे वैम्पायर चमगीदड़ कहते हैं। वैम्पायर चमगीदड़ का आकार गिलहरी के आकार का दूना या दूने से भी बड़ा होता है। उसके पंख का फैलाव कम से कम पाँच फुट तक होता है। एक चमगीदड़ के सुरक्षित नमूने में तो पंख का फैलाव सात फुट देखा गया है। यह पक्षी सुमात्रा में पाया गया था। कदाचित यह सबसे बड़े आकार का हो। इसके शरीर का रंग मटमैला भूरा होता है; सिर, गर्दन, तथा कंधे का रंग लाल मिश्रित भूरा होता है और पंख का रंग साधारण चमगीदड़ की तरह काला होता है। यह कीट तथा फल-भक्षी है, परन्तु रक्त-पिपासु भी कहा जाता है।

कदाचित इसमें ऐसी शक्ति होती है जिससे अपनी जीभ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिरे को किसी सोते हुए मनुष्य की धमनी (रक्त नलिका) में ऐसा चिपका देता है कि यथेष्ट रक्त चूस ले और सोते मनुष्य की नींद न खुले। रक्त चूसने की सारी अवधि तक यह अपने पंखों से हवा कर मनुष्य को सोया पड़ा रहने के लिए ठंडक-सा उत्पन्न करता रहता है। गर्म देश में ऐसी ठंढक उत्पन्न करने की क्रिया अवश्य ही मनुष्य को अधिक सोते रहने देती होगी। अतएव खुले रूप में ऐसे स्थानों में सोना भयानक हो सकता है जहाँ इस रक्तपिपासु चमगीदड़ का निवास हो। खुली खिड़की के कमरों में भी इसका आक्रमण चुपके से होता है। अमेरिका में बहुत पशु इसके रक्त शोषण द्वारा मृत होते कहे जाते हैं। जीभ की परीक्षा करने पर उसके सिरे पर बहुसंख्यक, नोकीले उभाड़ पाये जाते हैं; किन्तु अन्य कोई विशेषता जीभ में नहीं पायी जाती जिससे इसे रक्त-शोषण में सहायता मिलती हो। इसके नोकीले कुतरने वाले दाँत सोते हुए मनुष्य या पशुओं के शरीर में काटकर रक्त बहा देते हैं। यह उस रक्त को चूस लेता है। दक्षिणी अमेरिका में कुछ चमगीदड़ ऐसे भी होते हैं जो पानी पर तैर जाते हैं जिससे मछली तथा भींगे को पकड़ कर खा सकें। मेढक, कीड़े-मकोड़े, छोटी चिड़िया या स्तन-पायी जंतु भी इनका आहार बनते हैं।

अधिकांश चमगीदड़ों के बड़े कान होते हैं जिनके भीतर दूसरे क्षुद्रकर्ण होते हैं। कुछ में मस्तक पर नासिका पत्र या चमड़े के लटके भाग होते हैं जिससे उनका रूप विद्रूप दिखाई पड़ता है किंतु ये लटकन रूप के उभड़े भाग या नासिकापत्र क्या वस्तु हैं, उनका क्या उपयोग है, इसका विज्ञान को कुछ भी पता नहीं लग सका है। छत्रीय नासिकायुक्त चमगीदड़ की एक जाति वैम्पिरस स्पेक्ट्रम नाम की पाई जाती है जो ६ इंच लंबे तथा ३० इंच तक झिल्लीनुमा डैने के फैलाव रखने वाले होते हैं। यह मांसभक्षी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

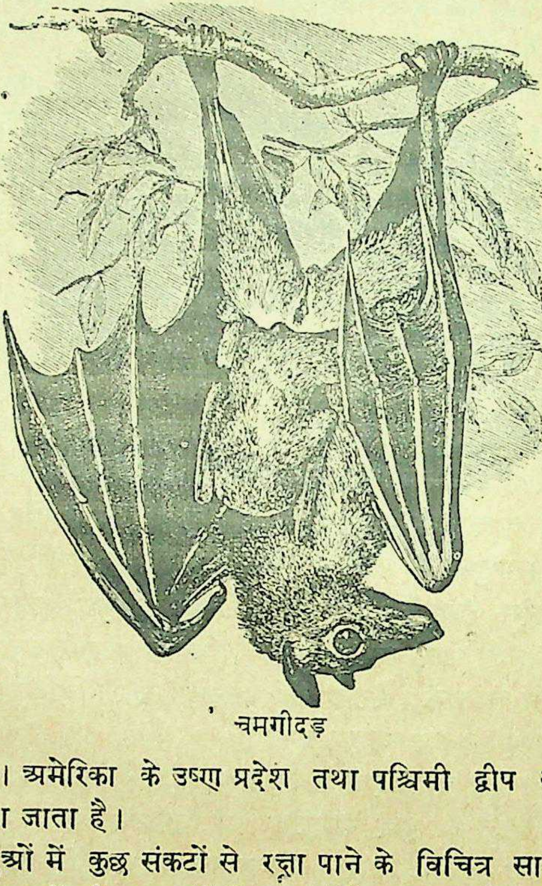

चमगीदड़

होता है। अमेरिका के उष्ण प्रदेश तथा पश्चिमी द्वीप समूहों में यह पाया जाता है।

जंतुओं में कुछ संकटों से रक्षा पाने के विचित्र साधन पाये जाते हैं। इनमें शीत ऋतु में हिमपात होने तथा आखेट कर सकने में कठिनाई होने से एक लंबी अवधि तक निराहार ही शयन कर जीवनयापन करने की सुविधा प्रकृति द्वारा उन्हें प्राप्त हुई रहती है। ऐसे ही शीतशायी रूप के कुछ चमगीदड़ भी होते हैं जो शीत के विषम ऋतु के आगमन पर सैकड़ों की संख्या में परस्पर चिपटे रह-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर कहीं खोहों, कंदराओं में एकत्र लटके पड़े रह जाते हैं। साधारण व्यक्ति उन्हें देखकर यह बता सकने में सर्वथा असमर्थ ही होता है कि वे यथार्थ में मृत हैं या केवल शीतशायी बने पड़े हैं। ऐसी क्रिया में प्राण की रक्षा तो हो जाती है, परन्तु शरीर बहुत कृशित हो जाता है। एक पर्यवेक्षक ने एक वर्ग फीट तल से कई चमगीदड़ों को एकत्र लटके देखा। पाँच-छः मास की लंबी शीत ऋतु में इनके शरीर का एक तिहाई भार कम हो जाता है। परंतु भोजन के अभाव में प्राण रक्षा की यह सफल विधि प्रकृति की अद्भुत देन कही जा सकती है।

अधिकांश चमगीदड़ वर्ष भर में केवल एक बार एक बच्चा देते हैं। बच्चा यथेष्ट वयस्क होने तक अपनी माता के रोम से ही लिपटा पड़ा रहता है। जब उसका शरीर यथेष्ट पुष्ट हो गया होता है तथा वह उड़ने की शक्ति आई देखता है तो माता-पिता के अनुकरण में संसारयात्रा के लिए अकेला उड़ने का साहस करता दिखाई पड़ता है।

चमगीदड़ों में सन्तानोत्पादन की क्रिया वसंत तथा ग्रीष्म काल में देखी जाती है। वैज्ञानिकों की यह कल्पना है कि नर-मादा का संयोग हो जाने पर शुक्रकीट मादा चमगीदड़ के गर्भाशय में शीतशायी काल की पूरी अवधि तक शांत पड़ा रहता है किंतु जब नवजीवन की भाँति पुनः वसंत का आगमन होता है तथा शीत की विषम ऋतु समाप्त हो चुकी होती है तो शीतशायी रूप की कुंभकर्णी निद्रा त्यागने पर माता के जग-उठने पर शुक्रकीट भी जागृत-सा हो उठता है। उसी समय शुक्रकीट का गर्भांड से मिलन होता है। यही यथार्थ गर्भाधान क्रिया होती है। प्रकृति की यह व्यवस्था उन चमगीदड़ों की संतानवृद्धि में भी सहायक सिद्ध होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ पक्षी क्यों नहीं उड़ते ?

जीवन-संघर्ष के लिए हम अनेक चतुष्पदों को नए-नए साधन प्राप्त करने के प्रयत्नों में जहाँ कुछ सीमित अंश तक उड़ने का प्रयास करते पाते हैं, वहाँ अवस्था दूसरी होने से हमें कुछ ऐसे पक्षियों को देखने का अवसर प्राप्त होता है जो जीवन-यापन की सुविधा होने तथा अपना आकार-प्रकार भारी-भरकम होने से उड़ने की क्रिया ही भूल चुके ज्ञात होते हैं। यह सच है कि जनाकीर्ण मेले-ठेले की भगदड़ या मनुष्यों के भारी हंगामे में आप एक स्थल पर ठहरे नहीं रह सकते, या तो आप आगे बढ़ेंगे या पीछे हटते जा सकते हैं। इसी प्रकार संसार के जीवन-युद्ध में जीवों को हम स्थिर पड़ा नहीं देख सकते। वे विकास की गति में आगे बढ़ सकते हैं या धीरे-धीरे पीछे हट कर अशक्त होकर नष्ट या विलुप्त हो जाते हैं।

आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे की ओर जाने या अवनति का मार्ग पकड़ने वाले जन्तुओं में ऐसे अनेक पक्षियों का नाम लिया जा सकता है जो कभी उड़ कर जीवन-यापन करते रहे हों, परन्तु अब वे उड़ने से बिल्कुल ही लाचार हैं। पिंजड़े में पड़ा हुआ तोता या कोई भी पक्षी बैठे-बैठे मनुष्य के हाथ से भोजन पाता है। उसे अपने भोजन की खोज में पङ्ख फटफटाने की कोई भी आवश्यकता नहीं होती। शत्रु से पीछा छुड़ाने के लिए भी द्रुत वेग से उड़ भागने की चिंता नहीं करनी पड़ती। अतएव सब अंगों तथा पेशियों तथा पङ्खों से सम्पन्न रहने पर भी अपनी उड़ान की वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्रिया करने में समर्थ नहीं हो सकते जिसके लिए वे स्वतन्त्र जीवन में अभ्यस्त थे। अतएव कभी पिंजड़ा असावधानी से खुला रह जाने पर इनके बाहर निकल कर उड़ने का अवसर होता है तो वे अपनी अनभ्यस्त अवस्था से उड़ने से कुछ लाचार ही रहते हैं। निदान अधिक चपल तथा शक्तिशाली शत्रु रूप के कौए या अन्य पक्षी उनका शीघ्र शिकार कर जीवन-लीला समाप्त ही कर देते हैं।

जीव-जन्तुओं के जन्म तथा विकास की कहानी में पक्षी के प्रसंग में हमें यह विश्वास करना पड़ता है कि पहले कोई भी जन्तु व्योमचारी न रहा होगा। जब जीवों का प्रारम्भ समुद्र से स्थल की ओर होना प्रारम्भ हुआ तो पहले उभयगामी या जल और स्थल दोनों में ही रह सकने वाले जीव उत्पन्न हुए। उनके पश्चात् केवल स्थल पर ही रह सकने वाले सरीसृप जन्मे तथा धरा पर सर्वत्र पनपे। उनके ही रूप विकसित होने पर कदाचित् पक्षियों के पूर्वजों ने पहले कुदान या कुलाँच से धीरे-धीरे उड़ाकू कुदान का ज्ञान प्राप्त किया होगा। तत्पश्चात् उड़ने की पूर्ण क्रिया का श्रीगणेश पक्षियों रूप में हुआ होगा। यह तो प्रगति का मार्ग हुआ, परन्तु इतना विकास हो जाने पर भी कुछ स्थितियाँ फिर पीछे पहुँचाने वाली हो सकती थीं। उड़ने की क्रियाशीलता छुड़ाने वाली परिस्थितियाँ पक्षी के वृहद् आकार तथा बल के अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियाँ भी हो सकती थीं। जल में भोजन की सामग्री कुछ विशेष सुविधापूर्वक मिल सकने से कुछ पक्षी जलाशयों के ऊपर निर्भर रह कर केवल डुबकी लगाने या पानी पर तैर सकने में दक्ष हो सकते थे। अतएव उड़ने के स्थान पर उनमें इन क्रियाओं की ही अधिक प्रवृत्ति तथा शक्ति उत्पन्न हो सकती थी। दूसरी परिस्थिति हम किसी निर्जन द्वीप का समझ सकते हैं जहाँ खाद्य द्रव्य बड़ी सुगमता से मिल जाते हों। अतएव उड़ना या कुछ भी उद्यम साधा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रण जीवन के लिए आवश्यक न रह गया हो, अतएव पीढ़ियों की पीढ़ियाँ धरातल पर खा-पीकर ही सुख चैन से रहती आई हों, परन्तु किसी समय मनुष्य का वहाँ आगमन होने के पहले की परिस्थिति बदल जाने पर वहाँ के निवासी पक्षियों को मनुष्य रूप में एक भारी शत्रु आ खड़ा दिखाई पड़ा हो, परन्तु उससे छुटकारा पाने के लिए उनमें उड़ने की शक्ति का पुनः उद्भव होना कठिन ही रहा हो अतएव उनके वंशों का लोप हो जाना ही एक आवश्यक परिणाम हो सकता था।

डोडो

डोडो नाम का पक्षी आज विलुप्त हो चुका है। सत्रहवीं शताब्दी तक उसका वंश जीवित था। उस समय जिन चित्रकारों को उसका चित्र उतारने का अवसर प्राप्त हो सका उनकी कृतियाँ

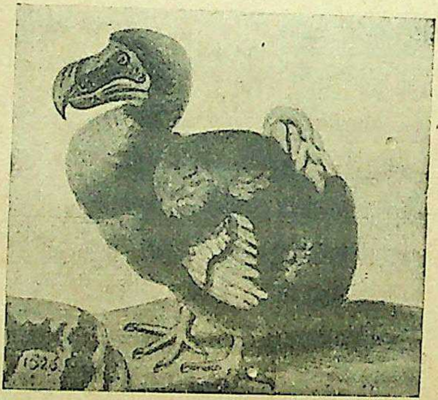

डोडो

आज के संग्रहालयों तथा कलापारखियों के मनोरंजन की वस्तु हो गयी हैं। कहीं उसके मृत शव के अवशेष प्राप्त हो सके हैं तो उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी बड़ी यत्न से रक्षा करने का प्रयत्न कर उसकी स्मृति सुरक्षित की गई है। यह पक्षी निर्जन द्वीप में वास करने से एकछत्र-सा राज्य करता था। वह भोजन की चिंता तथा शत्रु की आशंका से बिल्कुल ही मुक्त हो गया था। वृक्षों से टपक-टपक कर फलों की अगाध ढेरी-सी बिछी होने पर यह अनायास भोजन पाकर मोटा होता रहता और निर्द्वन्द्व जीवन-यापन करता। इसे कभी भी किसी खटके या चिंता से पङ्ख फटफटाने का कोई अवसर न आता। इन राम-राज्य की भाँति सुखोपभोग का जीवन व्यतीत करने वाले पक्षी के देश में यूरोपीय माझियों का जब सत्रहवीं शताब्दी में प्रवेश हुआ तो उन्हें ऐसा सहज आखेट पा कर डोडो का सर्वनाश करने में कुछ दया का आविर्भाव न हुआ। किसी अस्त्र-शस्त्र या भाग-दौड़ के बिना ही इन निरीह पक्षियों के सिर पर एक डंडे की चोट मार देना ही प्राणान्त कर देने वाला सिद्ध होता। अतएव वे इनका मनमाना आहार करते। अतएव निर्द्वन्द्वता का जीवन व्यतीत करने वाले डोडो ने अपनी उड़ान शक्ति का लोप हो जाने से कुछ समय में ही अपने पूर्ण वंश का लोप होते देखा। यही कारण है कि कुछ ही शताब्दियों पूर्व मारीशस द्वीप में भरे पड़े रहने वाले ये पक्षी आज संसार से लुप्त हो चुके हैं। हम जब उद्योगहीन होकर अंगों को निष्क्रिय रखने का अवसर ही पा रहे हों तो जीवन का अंत करने वाला कुसमय आते विलंब नहीं लग सकता। यह सृष्टि का विधान ही है कि उद्योगशील तथा पराक्रमी ही जीवित रह सकते हैं।

बड़ा आक

बड़ा आक पक्षी आइसलैंड तथा न्यूफाउंडलैंड के तटीय भागों में निवास करता था जिसे यूरोपीय माँझी देखने का अवसर पाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
रहे होंगे, परंतु अब यह पक्षी कहीं भी नहीं पाया जाता। उन्नीसवीं शताब्दी में ही इसके वंश का लोप हो गया। इसके जीवन में निर्द्वन्द्वता आ जाने से उड़ने की आवश्यकता का सर्वथा अभाव हो गया होगा। अतएव इसने भी उड़ने की क्रिया से विमुख होकर साधारण स्थलजीवी जन्तु का जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया किंतु सतत भ्रमणशील यूरोपीय माझियों के निरन्तर सम्पर्क में आते रहने से इनका वंश न्यून होने लगा। इस पक्षी को सहज ही पकड़ कर माझी भोजन सामग्री का तो काम लेते ही, इसके पङ्ख भी ऊँचे दामों पर बिकते। कभी-कभी अँगीठी में ईंधन की भाँति भी इनका उपयोग होता। किन्तु जब इनकी संख्या कम होने लगी तो अलभ्य पक्षी की भाँति इनकी कुछ अधिक पूछ होने लगी। बिल्कुल ही लुप्त हो जाने पर भूसी भरे चिड़िया के चमड़े तथा अंडे बड़े ऊँचे दामों पर अलभ्य वस्तुओं की भाँति बिकने लगे। एक बार तो छः अंडों का मूल्य लंदन के बाजार में प्रति अंडे के हिसाब से सवा सौ से लेकर चार सौ पौंडों तक प्राप्त हुआ। बेचारा बड़ा आक तो अपनी उड़ान शक्ति के लोप हो जाने से अपने वंश का ही लोप होते देख सका, परन्तु उसके शव तथा अंडे के पीछे मनोरंजनप्रिय मनुष्य मोल-तोल करने में लगे रहे। आज बड़े आक के गुण, स्वभाव आदि की बातें कल्पना की ही वस्तु हो गई हैं। कोई कहता है—वे तैरते रहे होंगे, तो दूसरा बताता है कि उनके लिए पानी में तैर सकना कठिन रहा होगा। उसकी रूप-रेखा तथा स्वभाव को दक्षिणी गोलार्द्ध में पाये जाने वाले पेंग्विन पक्षियों के समान अनुमान किया जाता है। पेंग्विन धुर दक्षिण में ही अधिकांश होते हैं। उनके समानगोत्री पक्षी के उत्तरी ध्रुवीय प्रदेशों में निवास की कल्पना किस तरह ठीक बताई जाय, यह समझ में नहीं आता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दक्षिण ध्रुवीय पक्षी (पेंग्विन)

पेंग्विन नाम का पक्षी दक्षिणी ध्रुवदेशीय कहा जा सकता है। भूमध्य-रेखा से दक्षिण के गोलार्द्ध में ही यह होता है, किन्तु इसकी सबसे बड़े आकार की जाति धुर दक्षिण देश में ध्रुवीय महाद्वीप में ही पाई जाता है। यह एक विचित्र बात है कि दक्षिणी ध्रुव से ज्यों-ज्यों उत्तर आया जाय, इस पक्षी के लघुतर रूप ही मिलते जाते हैं। सबसे छोटे आकार के पेंग्विन पक्षी गैलापेगोज्ञ द्वीप समूह में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र को इनके प्रसार की उत्तरी सीमा माना जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में सबसे छोटे रूप के पेंग्विन को आश्रय देने वाला स्थान उष्ण जलवायु का है, किन्तु उससे नीचे अपेक्षाकृत निम्न तापमान के स्थानों में दीर्घतर आकार के पक्षियों के मिलते जाने से यह आभास होता है कि यह पक्षी यथार्थ में हिममय देश का ही वासी है जहाँ इसका सबसे अधिक दीर्घ रूप विकसित देखा जाता है। किन्तु इन रूपों का जो कुछ भी प्रसार है, वह केवल दक्षिणी गोलार्द्ध में ही है। उत्तरी ध्रुव प्रदेशों या उत्तरी गोलार्द्ध में कहीं भी हम वन्य जीवन व्यतीत करने वाला पेंग्विन नहीं देख सकते। यह दूसरी बात है कि कहीं जन्तुशालाओं में उनकी कुछ जातियाँ बंदी बनाकर पाली जायँ तो उत्तरी गोलार्द्ध के वासी भी उनका दर्शन कर सकें। फिर भी सबसे वृहद् आकार के पेंग्विन का दर्शन करना कठिन ही हो सकता है। कुल एक या दो ही ऐसे दीर्घतम आकार की जाति के पेंग्विन उत्तरी गोलार्द्ध की जन्तुशालाओं में पाले जा सके हैं, परन्तु मध्य या निम्न आकार के पेंग्विनों को पालना कठिन नहीं होता। अतएव उनको प्रायः सभी प्रसिद्ध जन्तुशालाओं में कृत्रिम जलवायु उनके उपयुक्त बनाकर पाला जा सकना संभव हो सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबसे बड़े आकार के पेंग्विन को सम्राट् पेंग्विन नाम दिया जाता है। यह खड़े होने पर चार फीट से कुछ अधिक ऊँचा दिखाई पड़ सकता है। यह दक्षिणी ध्रुव के निकट अंटार्कटिक प्रदेश के हिमाच्छादित तल पर ही जीवन यापन करता पाया जाता है। यह एक भारी विस्मय की बात है कि सम्राट् पेंग्विन घोर शीतकाल के मध्य ही सन्तानोत्पादन क्रिया करता है। यह समुद्रतलीय हिम-राशि पर ही केवल एक अंडा देता है। ध्रुव प्रदेशों की यात्रा करने वाले वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश के नैसर्गिक दृश्यों का अवलोकन कर सम्राट् पेंग्विन के सम्बन्ध में भी विशेष विवरण प्राप्त करने का उद्योग किया है। नवजात पेंग्विन की रक्षा के लिए अनेक निस्सन्तान पेंग्विन पक्षियों को धर्म पिता बनने का उद्योग करते देखा जाता है। वे नवजात शिशु पर तरस खाकर संरक्षक बनने के उद्योग में क्रीड़ा कंदुक की भाँति दुर्दशा कर डालते हैं। इस प्रकार दया भावना दिखाने के ही कारण कितने नवजात पेंग्विन अयाचित संरक्षकता के संघर्ष में अपने प्राण गँवा देते हैं।

हम सम्राट् पेंग्विन के आकार का जन्तु घोर हिममय वाता-वरण में ही जन्म लेते तथा वृद्धि पाकर जीवन यापन करते देखकर बड़े विस्मय का अनुभव करते हैं। अतएव यह सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि इन हिमप्रिय जन्तुओं को कहीं जन्तुशाला में पालना कठिन कार्य ही हो सकता है। यही कारण है कि यूरोप में केवल एक दो सम्राट् पेंग्विन को ही पाला जा सका है। अमे-रिका में भी कतिपय सम्राट पेंग्विनों को कुछ मासों तक जीवित पाल सकने में सफलता मिल सकी है। परन्तु उनको स्थायी रूप से जन्तुशाला का सदस्य अधिक संख्या में बना सकना टेढ़ी खीर ही है।

सम्राट् पेंग्विन से उतर कर कुछ छोटे आकार के पेंग्विन राजा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेंग्विन कहे जाते हैं। इस जाति के पेंग्विन पक्षी बहुतेरे पाले जा सके हैं। बंदी जीवन में ही रहते हुए इसे सन्तानोत्पत्ति करते भी पाया गया है। न्यूज़ीलैंड में प्रस्तरावशेष रूप में तो हमें ६ फीट ऊँचाई के पेंग्विन देखने को मिलते हैं, परन्तु राजा पेंग्विन का आकार वर्तमान रूप में ३ फीट ऊँचा पाया जाता है। एक पेंग्विन का भार लगभग २० सेर हो सकता है। राजा पेंग्विन का वैज्ञानिक नाम ऐप्टेनोडाइट्स पेटेगोनिका रक्खा गया है। पेटेगोनिया दक्षिणी ध्रुवीय महादेश का नाम होने से इसकी जाति का यह नाम पड़ा है।

पेंग्विन पक्षी को समुद्री पक्षी कहा जा सकता है। राजा पेंग्विन का दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र के द्वीपों पर पाया जाता है। यहाँ वर्ष के बारहों महीने हिमराशि जमी पड़ी रहती है। किन्तु हिम से आंतरिक शरीर की रक्षा के भी प्रकृति ने साधन बना रखे हैं। उसके पंख बदन भर में इस तरह चिपके रहते हैं कि उनके आवरण के भीतर पानी का प्रवेश ही नहीं हो सकता। इसलिए उसका शरीर भीतर से उष्ण बना रहता है। हम किसी राजा पेंग्विन को देखकर यह नहीं कह सकते कि वह नर या मादा है। अहिरावण के दरबारियों की भाँति इनका आकार-प्रकार एक समान ही पाया जाता है। सन्तानोत्पत्ति के लिए ये केवल एक अंडा देते हैं जो पचास दिन सेये जाने के पश्चात् शिशु उत्पन्न करता है।

राजा पेंग्विन के आकार-प्रकार से जहाँ नर और मादा का भेद नहीं ज्ञात होता है, वहीं अंडा सेने में भी बारी-बारी से दोनों को भाग लेते पाया जाता है। उनके पैर की उँगलियों के मध्य सम्बद्ध झिल्ली या बत्तख के पैरों के संलग्न चमड़े की भाँति पट्टी होती है। उन रबरनुमा पट्टी या झिल्ली को ही मरोड़ कर वे अंडे को सँभाल रखने के लिए थैली-सी बना लेते हैं। बारी बदलने पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंडे को बड़ी ही सावधानी से वे दूसरे के पैरों की झिल्ली द्वारा

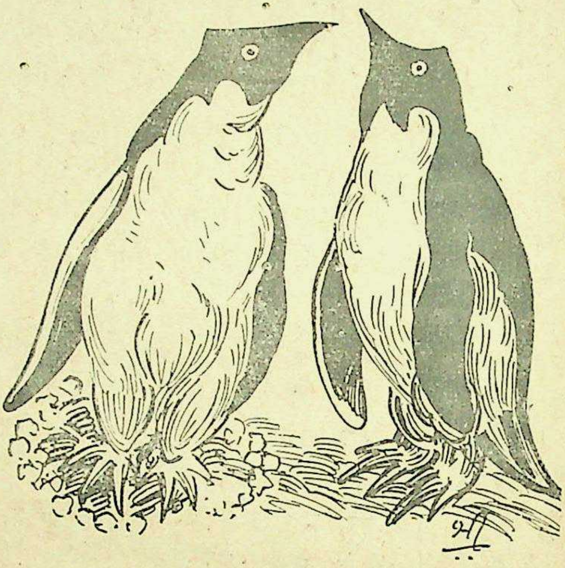

लघु पेंग्विन

निर्मित थैली में डालते हैं और उसे गर्म रखने का प्रयत्न करते हैं। फेर-बदल करने में अंडा भूमि स्पर्श नहीं कर पाता। जब अंडे को अपने पादचर्म की पेटिका में पेंग्विन सँभाले रहता है तो उसका शरीर स्थिर रूप से साधा पाया जाता है। वह हिलता-डुलता नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु अंडा सेने की इस समाधि-सी अवस्था में वह बिना शरीर हिलाये यथेष्ट दूर तक घूम फिर आ सकता है। इस गति में अंडे को तनिक भी क्षति पहुँचने नहीं पाती। यह सावधानी तथा सुरक्षा भावना अपने अगाध संतान प्रेम के ही कारण पेंग्विन पक्षी प्रदर्शित कर दिखाता है।

सन्तानोत्पादन की तैयारी में पेंग्विन पक्षी के प्रेमालाप की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

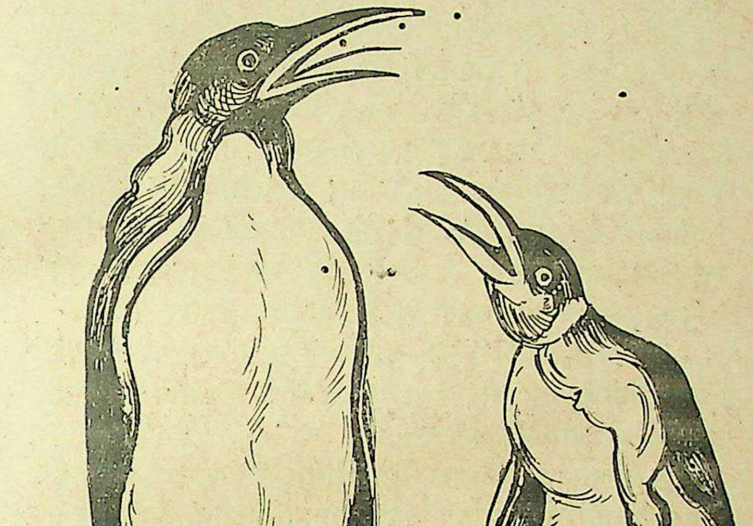

राजा पेंग्विन

कहानियाँ विचित्र हैं। वे अपनी प्रेयसी को ढूँढ़कर उसे अपना प्रेम-प्रस्ताव स्वीकृत कराने की चिन्ता में बड़े उद्योगशील दिखाई पड़ते हैं। अनेक बार तो प्रेमोन्मत्त पक्षियों को सहज ही अपनी प्रेयसी का प्रेम पा जाने का अवसर प्राप्त होता है परन्तु कुछ पक्षियों को पहले सर्वथा तिरस्कृत ही होना पड़ता है। प्रेयसी की अनुरक्ति से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वंचित रहकर वे हतोत्साह नहीं हो जाते, बल्कि अनुनय विनय करते निकट पड़े ही रहते हैं। अन्त में कुछ समय के अनुराग-प्रदर्शन से प्रेयसी का प्रेम-भाव पति को प्राप्त हो ही जाता है तथा नवसृष्टि का उद्भव होने के लिए गर्भ में अंडे का आगमन हो जाता है। यह नैसर्गिक उत्प्रेरणा होती है जो पति तथा पत्नी रूप में दो पेंग्विन पक्षियों को नयी पीढ़ी के शिशु को उत्पन्न करने के लिए आमंत्रित करती रहती है। यही सृष्टि का विधान है जिससे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि रूप की समस्त प्राणवान सृष्टि आगे की ओर बढ़ती चलती है। पुरानी पीढ़ी समाप्त हो जाती है, दम्पति या माता-पिता कहे जाने वाले जीव समाप्त हो जाते हैं तथा अंडे या गर्भ से सदेह नवजात शिशु कालान्तर में वृद्धि पाकर उनका स्थान लेते जाते हैं।

जब पेंग्विन का नवजात शिशु संसार में पदार्पण करता है तो वह परिधान या पंख रूप के रक्षा-साधन से हीन ही होता है। उस समय विषम ऋतु के प्रहार को उसके माता-पिता या प्रकृति ही निवारण करने का कुछ मार्ग निकालती है। किसी प्रकार जीवित रह जाने पर कतिपय दिवसों पश्चात् ही उसका कलेवर पंखाच्छादित हो जाता है तथा शीत की विकटता को चुनौती देकर उसका जीवन संचालित रखता है। अपने शिशु को पेंग्विन माता-पिता भोजन देने के लिए अधिक समय तक व्यवस्था रखते चलते हैं। शिशु अपने मुख को माता की चोंच में डाल देता है और वहीं भोजन को स्थानान्तरित होकर शिशु के मुख में पहुँचने का अवसर आता है। इस प्रकार छः मास तक निरंतर ही पेंग्विन अपने शिशु को खिला कर पालता रहता है। खा-पीकर शिशु पेंग्विन कुछ दिनों में अपने माता-पिता से भी कुछ बड़ा ही आकार दिखाकर स्वतन्त्र-जीवी बनता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमप्रधान प्रदेश में जीवनयापन कर सकने की सामर्थ्य रखने वाले जीव को कोई बाहरी सहारा न पकड़ कर अपने शरीर के आंतरिक साधनों पर ही अवलंबित रहना पड़ सकता है, अतएव पेंग्विन अपनें निवास के हिम प्रलय सदृश वातावरण में कहीं भी सूखा स्थल न होने से बिल या घोंसला बनाने की बात नहीं सोच सकता। इसी कारण अंडा सेने की विधि पैर के चंगुलों के मध्यस्थ झिल्लीतल पर घोंसलानुमा थैली बना लेने की बात प्रकृति ने सुझा दी है।

पेंग्विन पक्षी का अधिकांश जीवन समुद्र में ही व्यतीत होता है। अतएव लगभग जलचर जीवन ही उसे बिताना पड़ता है। उसके लिए प्रकृति द्वारा उसे यथेष्ट सहायता भी प्राप्त हो सकी है। शरीर के ऊपर के पंख उसके चमड़े की परत को जल से अभेद्य ही रखते हैं। उधर डैनों का भी रूप बदल कर नाव के डाँड़ की भाँति चमड़े की पट्टी दोनों ओर लटकी रहती है। यह चर्म-पट्टिका उसके लिए डाँड़ या जल रूपी आकाश में उड़ने में पंख का काम देती है। बल्कि हम यह कह सकते हैं कि अपने डैनों के स्थान पर सज्जित चर्म-पेटिकाएं दोनों पार्श्वों पर स्थित रह कर उन्हें पानी के अन्दर उड़ाती-सी होती हैं। उन चर्म-पेटिकाओं को उसकी मांस-पेशियाँ वेग से संचालित कर उसे समुद्रतल पर दौड़ सकने में समर्थ बनाती है। इस प्रकार के साधनों से सज्जित होकर उनका समुद्र के ऊपर जीवन एक स्वाभाविक बात ही हो जाता है। अतएव केवल अंडे देने या पर गिरा कर नये पर उगाने ही के लिए स्थल पर आते हैं। समुद्र में तैरने के लिए जहाँ चर्मपेटिका रूप पंख या डैनों से सहायता मिलती है, वहाँ नेत्रों की पानी से रक्षा करने के लिए एक आवरण रूप की झिल्ली का परदा फैल जाने का विधान पाया जाता है। जब पेंग्विन तैरता होता है तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके पैर शरीर से चिपके होते हैं तथा चर्म-पेटिका गति करती रहती है।

वैज्ञानिकों के पर्यवेक्षण द्वारा विदित होता है कि पेंग्विन अपने जोड़े को गर्भाधान के लिए अनुप्रेरित करने के लिए कुछ संकेतों से अपना प्रेम-प्रस्ताव रखता है। इसके लिए नर पेंग्विन एक प्रस्तरखंड चोंच में उठा कर मादा पेंग्विन के समक्ष रख देता है। वह स्वयं भी सामने जा खड़ा होता है। यदि उसके प्रस्तरखंड रूप भेंट को मादा पेंग्विन ने स्वीकार कर लिया तो ठीक ही है अन्यथा अस्वीकृत होने की अवस्था में वह आँखें मूँद कर कातर बन कर दुबक कर बैठ जाता है और क्रुद्ध मादा पेंग्विन को अपने शरीर पर चोंच का प्रहार होने देता है। मादा के चोंच मारते-मारते थक जाने पर वह पार्श्ववर्ती हो जाता है और उसे शान्त करने के लिए धीरे-धीरे मन्द ध्वनि करता रहता है। अन्त में मादा उसका प्रेम-दान स्वीकार कर ही लेती है। यह प्रेम-कथा विशेषतया क्षुद्राकार पेंग्विन की है जिसे एडिली पेंग्विन या निम्नवर्गीय पेंग्विन कहा जा सकता है। इसका आकार राजा पेंग्विन का आधा ही होता है।

शुतुर्मुर्ग

दीर्घाकार पक्षियों में शुतुर्मुर्ग सर्वशिरोमणि कहा जा सकता है। इसकी कई जातियाँ संसार के अनेक देशों में दक्षिणी गोलार्द्ध में पाई जाती हैं। दक्षिणी अफ्रीका में हम जहाँ शुतुर्मुर्ग का अस्तित्व पाते हैं, वहाँ भूमध्य रेखा के उत्तर के भूखंड में अफ्रीका में ही इन पक्षियों का सर्वथा अभाव पाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इस पक्षी का प्रसार तथा विकास क्यों नहीं पाया जाता, इसका कुछ स्पष्ट कारण कहना कठिन ही है। शुतुर्मुर्ग की ही भाँति अन्य पक्षी भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं जो उड़ने की शक्ति से वञ्चित होते हैं और केवल दौड़ कर ही जीवनयापन कर सकते हैं। इन सब को धावक पक्षी नाम दिया जा सकता है। सभी धावक या उड़ने की शक्ति से हीन पक्षियों को

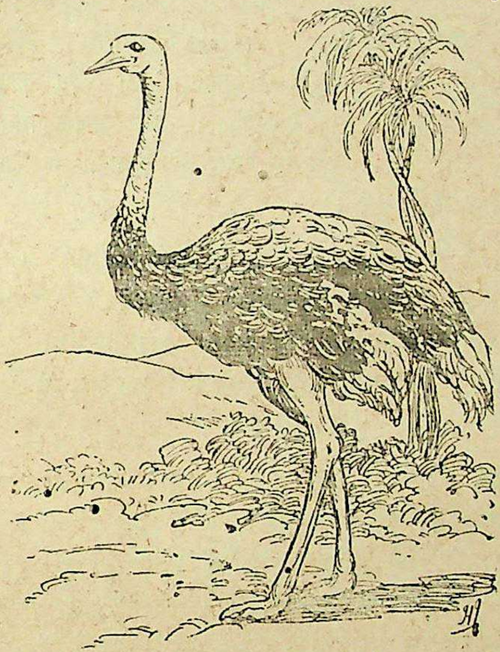

शुतुर्मुर्ग

विशेषकर दक्षिणी गोलार्द्ध का ही निवासी पाया जाता है। कुछ यथार्थ शुतुर्मुर्ग जहाँ-तहाँ भूमध्य रेखा के उत्तर में भी कभी-कभी पाये जा सकते हैं।

धावक पक्षियों में अफ्रीका के शुतुर्मुर्ग, दक्षिणी अमेरिका के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रीज़ या दक्षिण अमेरिकीय शुतुर्मुर्ग, तथा आस्ट्रेलिया के एमू तथा कैसोवरीज पक्षी हैं। इन सब पक्षियों में डैने बहुत ही क्षुद्राकार पाये जा सकते हैं तथा पङ्ख कोमल होते हैं। उनमें उड़ाकू पक्षियों की भाँति कड़े पक्ष-दंड नहीं होते। इन पक्षियों का धावक नाम ही पड़ा है और दौड़ कर ही इनको मुख्यतया अपनी जीविका चलाने तथा शत्रु तथा सङ्कटों से रक्षा पाने का सतत उद्योग करना पड़ता है अतएव पैर पुष्ट बने होते हैं। सभी धावक पक्षी बड़े-बड़े अंडे देते पाये जाते हैं। इनमें अंडा सेना प्रायः नर पक्षियों के हिस्से का कार्य होता है।

अंडे से उत्पन्न होने पर शिशु के शरीर पर प्रायः धारियाँ पड़ी होती हैं। इन धारियों से पृथक-पृथक अंगों का रूप छिप जाता है अतएव शत्रु उसके रूप का पता न पाकर धोखे में ही रह जाता है तथा उस पर आक्रमण नहीं हो पाता। यह रंग की धोखा-धड़ी शिशु की रक्षा का साधन होती है।

धावक पक्षियों में सबसे बृहद् आकार का पक्षी, अफ्रीका का शुतुर्मुर्ग होता है। यह आधुनिक काल के सभी पक्षियों से बड़ा रूप रखता है। एक पूर्ण वयस्क शुतुर्मुर्ग की ऊँचाई ८ फुट हो सकती है तथा शरीर का बोझ लगभग चार मन होता है। नर शुतुर्मुर्ग धवल कृष्ण मिश्रित रंग के होते हैं तथा दुम में बहुचित्रित पङ्ख लगा होता है किंतु मादा शुतुर्मुर्ग कुछ छोटे आकार की होती है तथा गम्भीर धूसर रंग की होती है। शुतुर्मुर्ग के अंडे दीर्घाकार होते हैं जिन पर श्वेत प्रकवचीय आवरण होता है। मांसभोजी जनों को यह विशेष प्रिय होता है। जहाँ मुर्गी के एक दो अंडे से एक व्यक्ति का ही लघ्वाहार हो सकता है वहाँ शुतुर्मुर्ग का अंडा तोल में डेढ़ सेर होता है। उसे पौन घंटे तक उबालने पर ही कड़ा रूप बनाया जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकना सम्भव होता है। इस एक अंडे से तो १०-१५ व्यक्तियों का लव्वाहार बन सकता है।

शुतुर्मुर्गों का झुण्ड होता है, जिसमें गायों के एक झुण्ड में एक साँड़ होने के नमूने पर तीन-चार मादा शुतुर्मुर्गों के मध्य एक नर शुतुर्मुर्ग होता है। ये तीनों-चारों मादा शुतुर्मुर्ग एक ही घोंसले में एकत्र अंडे देती हैं। घोंसला क्या होता है, उसे रेत में खुदा गड्ढा ही कहना चाहिये। उसके ऊपर दिन को तो मादा बैठकर सेती रहती है। परन्तु रात को सेने का कार्य नर शुतुर्मुर्ग पर होता है। उसका उपयुक्त परिणाम भी होता है। रंग-रूप के कारण मादा शुतुर्मुर्ग दिन के समय अपने धूसर रंग के कारण दिन के वाता-वरण में छिपी पड़ी रहती है किन्तु रात के समय अंधकार के वाता-वरण में नर शुतुर्मुर्ग का श्याम वर्ण रंग छिपाने के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है।

पुराने समय में शुतुर्मुर्ग के बहुचित्रित पर को मनुष्य के पह-नावे में स्थान मिलता था। अतएव इस पक्षी को लोग पालतू बनाने लगे थे। परन्तु जब पर लगाने के चलन का लोप हो गया तो शुतुर्मुर्ग पालना भी बंद हो गया। दक्षिण अफ्रीका में पालतू शुतुर्मुर्गों को भी जंगल में छोड़ दिया गया। अब जहाँ-तहाँ ही पालतू रूप में इन्हें पाया जा सकता है।

शुतुर्मुर्ग का आकार विशाल अवश्य है, किंतु उसके अपेक्षाकृत वृहद् अंडे की मांस-भोजी मनुष्यों को आवश्यकता होती है। उधर मनुष्य के अतिरिक्त भी उसके शत्रु पाये जाते हैं जिनमें सिंह, व्याघ्र, चीता आदि का नाम लिया जा सकता है। लकड़बग्घा को तो उनके अंडों की अत्यधिक चाह रहा करती है। अतएव शुतुर्मुर्ग इन शत्रुओं से बचने का यत्न करता है। इसके लिए प्रकृति ने उनमें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सावधान रखने की शक्ति दी है। उसकी श्रवण तथा दृष्टि इतनी तीव्र होती है कि अपने ऊपर आने वाली विपत्ति का तुरन्त आभास पा जाता है। धावक पक्षी नाम सफल करने में शुतुर्मुर्ग को प्रति घण्टे २६ मील भागते पाया जाता है। यह वेग उसकी रक्षा के लिए यथेष्ट होता है। द्विपद जंतु का इतनी गति से भाग सकना प्रशंसा की बात कही जा सकती है। अफ्रीका के शुतुर्मुर्ग दौड़ने में और भी तेज होते हैं। इनके पैर की उँगलियों की संख्या घट कर दो ही होती है। एक तो बड़ी होती है तथा दूसरी बहुत छोटी। इनके अधोतल में नर्म गद्दी होती है। वे ऊँट की तरह लचकीले होते हैं। उड़न-क्रिया के स्थान पर दौड़ का गुण ही इनमें भरपूर विकसित होता है।

री या दक्षिणी अमेरिका के शुतुर्मुर्ग का आकार अफ्रीका के शुतुर्मुर्ग का आधा ही होता है। इनके पैरों में तीन चंगुल होते हैं। पंख या डैने यथेष्ट विकसित तथा लम्बोतरे कोमल परों से आच्छादित होते हैं, किन्तु उड़ने के लिए वे व्यर्थ ही होते हैं। हाँ, दौड़ने में पाल की भाँति उनका उपयोग होता है। दक्षिण अमेरिका के घास के विस्तृत मैदानों में यह पाया जाता है तथा घास-पात तथा अन्य वनस्पति खा कर काल-यापन करता है। उनके पानी में तैरने की भी बात सुनी जाती है।

एमू तथा कैसोवरी पक्षी लम्बी गर्दन तथा पैरों में तीन चंगुल रखने वाले होते हैं। उनके डैने बहुत ही छोटे होते हैं तथा दुम का सर्वथा अभाव होता है। एमू पक्षी केवल आस्ट्रेलिया में पाया जाता है, जो मैदान तथा खुले हरे-भरे स्थानों में रहता है। अफ्रीका का शुतुर्मुर्ग अपने पैरों से आगे तथा पीछे ठोकर लगा सकने में समर्थ होता है, उसी प्रकार एमू पक्षी भी अपने पैरों से आगे या पीछे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ठोकर लगा सकता है। यह भी तीव्र गति से दौड़ सकने में समर्थ होता है।

कैसोवरी पक्षी को धावक-पक्षियों में सुन्दरतम कहा जा सकता है। इसकी गर्दन तथा सिर पर रोमों का अभाव होता है, परन्तु सारे शरीर पर रमणीय, नील श्याम वर्णीय रोममय पर भरे होते हैं। गर्दन तथा सिर के नंगे चमड़े के रंग गहरे नीले, लाल तथा हरे होने से सुन्दरता अत्यधिक दिखाई पड़ती है। इसके सिर पर एक भारी अस्थिमय टोप मढ़ा होता है। कँटीली झाड़ियों में घूमने-फिरने पर यह दृढ़ टोप बड़ी रक्षा करता है। इसका अस्त्र केवल बलिष्ठ पग होते हैं जो बीच की ऊँची रुकावटें भी कूद जाने में समर्थ होते हैं। किन्तु यह बड़ा कलह-प्रिय पक्षी होता है। इसके पैर में भीतरी चंगुल में एक बड़ी कील-सी होती है जो पैर की ओर से नीचे की ओर मार कर प्रहारित जन्तु पर भारी क्षति पहुँचा सकती है।

कीवी

सबसे छोटा आकार रखने वाला धावक पक्षी कीवी होता है। इसका आकार विचित्र ही होता है। इसमें उड़ने की शक्ति तो होती ही नहीं, शरीर पर डैने का चिह्न भी कहीं देखने को नहीं मिल सकता। दुम का भी कहीं पता नहीं होता। यह कैसा विचित्र पक्षी है जिसके पंख भी नहीं, दुम भी नहीं, फिर भी नाम पक्षी वर्ग में ही है। कीवी का यह विचित्र रूप दर्शनीय ही है। उसके शरीर पर रोमनुमा पर भरे दिखाई पड़ते हैं। उसकी चोंच लम्बी होती है, सिर छोटा होता है तथा पैर बहुत पीछे लगे दिखाई पड़ते हैं। मादा कीवी गठीली मुर्गी की तरह छोटी ही होती है, परन्तु नर कीवी अधिक बड़ा होता है। किन्तु इस पक्षी का अंडा इसके शरीर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
अपेक्षाकृत बहुत ही बड़ा पाया जाता है। उसकी लम्बाई पाँच इञ्च तथा व्यास तीन इञ्च होता है। कीवी पक्षी के चतुर्थांश आकार के लगभग अण्डे का आकार विस्मय की ही बात है। मुर्गी के एक अण्डे का औसत तौल तो ढाई औंस ही होता है परन्तु कीवी का एक अण्डा ११½ औंस तक का पाया जा सका है।

कीवी

कीवी को रात्रिचर पक्षी कहा जा सकता है। वह केचुआ तथा जमीन के कीड़े-मकोड़े को ही मुख्य आहार बनाने की खोज में रात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को सावधानीपूर्वक निकलता है। उसकी छोटी, दुर्बल आँखें तो निरर्थक ही होती हैं, परन्तु उसकी श्रवण-तथा गंध-शक्ति बहुत ही तीव्र होती है। ये गुण उसके जीवन-संघर्ष में बड़े ही सहायक सिद्ध होते हैं। उसकी गंध-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि जमीन में बिल के अन्दर अपनी लम्बी चोंच घुसेड़ने के पूर्व ही कीड़े की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसकी एक यह भी विशेषता है कि जहाँ अन्य पक्षियों में नाक की स्थिति चोंच के आधार में होती है, वहाँ कीवी की चोंच के अंतिम छोर पर नासिका का छिद्र अवस्थित होता है। यह पक्षी न्यूजीलैंड का निवासी है, परन्तु मनुष्य तथा कुत्तों के आक्रमण से यह लुप्तप्राय हो रहा है।

उलूक शुक या ककापो

ककापो या उलूक शुक भी न्यूजीलैंड का ही पक्षी है। अन्य भक्षक जन्तुओं के अभाव में इस देश में पक्षियों को वृहद् तथा भद्दड़ बना पाया जाता है। ककापो तोता निश्शंक रहने के कारण वृक्षों की जड़ के बीच बिल बना कर ही रहना पसन्द करता है। यह उल्लू की भाँति रात्रिजीवी जन्तु है। इसी कारण इसे उलूक शुक नाम दिया जाता है किन्तु इसमें रात्रिजीवी होने से मांस भक्षण की वृत्ति नहीं होती। यह घास-पात, बीज, झरबेरी तथा जड़ खाकर ही संतोष करता है। इसका आकार दो फीट लम्बा होता है, अतएव तोता वर्ग में इसे वृहत्तम आकार का पक्षी कह सकते हैं। न्यूजीलैंड के माओरी लोग इसके हरित वर्ण पंखों को अपने शरीर पर आभूषण की भाँति धारण करने के प्रेमी थे। माओरी लोगों के अध:पतन के साथ उपनिवेश स्थापित करने वाले यूरोपियनों के साथ पालतू बिल्ली भी पहुँच कर इस वृहदाकार तोते का वंश नष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उलूक शुक या ककापो

करती जा रही है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ समय में ककापो तोते का वंश विलुप्त ही हो जायगा।

तैराक बत्तख

स्थल पर निवास करने पर तो कुछ जंतुओं का भय बत्तख को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थोड़ी-बहुत उड़ान की शक्ति रखने के लिए विवश कर सकता है, परन्तु जल-विहार करने पर तो कोई भय ही नहीं रह सकता। अतएव जलविहारी या तैराक की जाति सर्वथा उड़नशक्तिविहीन होकर रहेगी। इस प्रवृत्ति का अनुभव करना आज भी सम्भव है। स्थलवासी बत्तख में यह विचित्रता देखी जाती है कि वर्ष के एक भाग में उसके पंख बिल्कुल ही झड़ जाते हैं, किन्तु इस दयनीय दशा में वह किसी प्रकार दुबके पड़ा रह कर समय काट लेता है। यह उड़नहीन अवस्था होने का ही प्रारंभ ज्ञात होता है। परन्तु जलविहारी (स्टीमर डक या टेचीरियर्स सिनेरियस) बत्तख में तो यह एक भारी विलक्षणता है कि बाल्यावस्था में यह उड़ सकता है। परन्तु वयस्क होने पर इसकी उड़न-शक्ति बिल्कुल ही मिट जाती है। ये लक्षण उड़नहीन बनने के ही हैं।

जलविहारी बत्तख की स्टीमर डक नामक जाति फाकलैंड द्वीप तथा मेगेलन के मुहाने में पाई जाती है। इसके पर धूसर तथा चोंच और पैर गहरे नारंगी रंग के होते हैं।

इसी प्रकार आवश्यकता के वशीभूत होकर हम जहाँ कुछ जंतुओं को नये साधन तथा शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति पाते हैं, वहाँ आवश्यकता की शिथिलता, भय तथा आशंका के अभाव में पक्षियों की अपनी उड़नशक्ति का लोप करते पाते हैं। भविष्य में अन्य पक्षियों की जातियाँ भोजन प्राप्त करने के लिए प्रयत्न के अभाव तथा सुख-शान्ति का वातावरण होने पर अपने जातीय गुण का लोप कर उड़नहीन अवस्था प्राप्त करती देखी जा सकती है। अतएव हमें ज्ञात होता है कि भय तथा आशंकामय जीवन तथा आवश्यकताओं की पूर्ति की कठिनाइयाँ जीव को अधिक सजग, उद्योगशील, कर्मठ तथा विकासगामी बनाती हैं; परन्तु सुख-सुविधाएँ, निष्कंटकता तथा निरापद जीवन अधःपतन तथा निकम्मेपन का मार्ग प्रदर्शित करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहार के लिए संघर्ष

समस्त जीवजगत को जीवित रहने तथा पनपते रहने के प्रयत्न में आहार के लिए आतुर पाया जाता है। उदर की ज्वाला उन्हें नाना प्रकार के उद्यम तथा कौशल कर दिखाने के लिए बाध्य करती है। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपने आहार के लिए बड़े जानवर का उद्यम तथा कौशल बड़ा तथा छोटे जंतु का छोटा नहीं दिखाई पड़ता। क्षुद्र या भीमकाय सभी जंतु अपनी बुद्धि के परिमाण या सुअवसर अथवा वंश-परंपरा के कारण छोटा या बड़ा प्रयास करते आते हैं। हमें यह प्रायः देखने को मिल सकता है कि कितने ही क्षुद्र अवहेलनीय आकार के जीवों का आहार-प्राप्ति का प्रयास अपेक्षाकृत बड़े जंतु से कहीं अधिक कौशलयुक्त तथा सराहनीय है जिसे देखकर हम चकित हो सकते हैं, परंतु दीर्घकाय होने से ही आहार प्राप्ति की महान् बुद्धि नहीं पाई जा सकती। कितने दीर्घकाय जंतु तो बुद्धि के अभाव में अपना वंश ही लोप कर धरा के गर्भ में युग-युगों से अक्षय प्रस्तरावशेष छोड़े जा सकने के प्रमाण से ही अपनी अवशता का पुष्ट प्रमाण हमारे सामने रखते आये हैं। अतएव आहार के लिए संघर्ष में कुशलता की मात्रा हम जंतुओं के आकार-प्रकार का ध्यान छोड़कर अधिक या न्यून पा सकते हैं।

मकड़ा कितना विद्रूप तथा गौण जंतु है। परंतु उसके आहार प्राप्त करने के साधन को तो देख कर स्तब्ध ही रह जाना पड़ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। घरों में अपनी थोड़ी भी असावधानी तथा कुछ समय के ही प्रमाद तथा आलस्य का प्रमाण कोनों तथा छतों के नीचे मकड़े का तार-निर्माण-उद्यम प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्त होकर उसके विकट उद्योग की कहानी हमारे सम्मुख रखता है, परन्तु हम तो एक उपहास की दृष्टि डालकर उसे मकड़ी का जाला ही कहकर केवल मलीनता की वस्तु तथा अपनी निरुद्यमता तथा आलस्य का ही परिणाम समझते हैं। समय का ध्यान होते ही हम बड़े झाड़ू से इन सब उद्योगों का अंत कर देते हैं। स्वच्छता की लपेट में मकड़े के समस्त गृह-उद्योग का सत्यानाश हो जाता है।

मानवकृत विज्ञान ने अद्भुत उन्नति की है। नाना प्रकार के नूतन साधनों का नित्य आविष्कार होने की बात सुनने में नहीं आती, प्रत्युत हमें उसका दैनिक जीवन में प्रत्यक्ष लाभ उठाने का अवसर आता है, फिर भी विज्ञान ने बहुत-सी बातें अभी तक ज्ञात की हैं। आज के ज्ञात ज्ञान की अपेक्षा हमें अज्ञात बातों या मर्म की मात्रा बहुत ही अधिक होने का स्पष्ट अनुभव हो सकता है। परन्तु मानव प्राणी सतत उद्यमशील है। उसके प्रयत्नों का आदि-अंत नहीं। फिर भी जंतुओं के कितने ही कौशल से मनुष्य को आज भी मात खाने के लिए विवंश होना पड़ता है। ऊनी और सूती वस्त्र तथा धागा कातने की हमारी मिलें अद्भुत चमत्कार दिखाती हैं। नाना रूप-रंग के परिधान द्रुतवेग से प्रस्तुत करने में परस्पर होड़ करती ही रहती हैं। परन्तु उनके हाथ बँधे होते हैं, निर्माण शक्तियाँ सीमित होती हैं। कोयला, पानी, बिजली, आदि चालक शक्ति की नितान्त आवश्यकता होती है, इधर ऊन, कपास, रेशम या कृत्रिम तन्तुओं की मात्रा कच्चे माल के रूप में नित्य मँगाने तथा निर्माण कार्य के लिए कारखाने के भंडारों में संचित रखने की आवश्यकता होती है। हम सावधानी रखने पर भी जब-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तब इन कारखानों को यह पुकार उठाते पाते हैं कि अब उनके पास कुछ मासों या सप्ताहों तक के लिए ही कच्चे माल रूप में कपास, कृत्रिम तंतु आदि सुलभ हैं। इतनी अवधि में ही कच्चे माल का अधिक भंडार बाहर से न आ सकने पर कारखाना ही बंद हो सकता है। यह मनुष्य की अवशता ही है कि खेतों में कपास उगने या मैदानों तथा पार्वत्य प्रदेशों में उत्तम भेड़ों को पालकर ऊन प्राप्त किये बिना ही वह अपने सूती तथा ऊनी वस्त्रों की निर्माणशालाएँ या कारखाने संचालित नहीं रख सकता, परन्तु मकड़े सरीखे उपेक्षणीय जंतु को देखिये, वह आजीवन तंतु-निर्माण करता ही रहता है। उसकी तंतु-निर्मायक ग्रंथियाँ क्लान्त नहीं होतीं। तंतु-निर्मायक भंडार समाप्त नहीं होता। ऊन की उसे चाह नहीं, कपास की कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी तंतु बनता ही जाता है। तन्तुओं के धागे से जाल बुना ही जाता रहता है।

अपने तंतु-निर्माण उद्यम से नन्हा मकड़ा हमारी विवेक तथा आविष्कार शक्ति को भयंकर चुनौती देता है। परन्तु हम अवश हैं। ऐसा साधन हमें सुलभ नहीं हो सका कि यंत्र के अंदर ही कच्चा माल भी स्वयं बन कर तैयार माल बनाता चला जाय। हमें भविष्य में भी ऐसा अद्भुत चमत्कार अपने हाथ में आने का कोई आभास नहीं मिलता दिखाई पड़ता। इस दशा में हम मकड़े से अवश्य ही स्पृहा रखने को विवश होते हैं।

जाला के अतिरिक्त भी कुछ मकड़ों में आखेट पकड़ने के साधन पाये जाते हैं। कुछ तो एक चिपकन द्रव अपने आखेट पर छिड़कने की शक्ति रखते हैं तथा कुछ मकड़े झपट्टा मारकर ही शिकार पकड़ने का गुण रखते हैं। शिकार को पा सकने की इन विभिन्न विधियों का प्रयोग करने वाले मकड़ों को छोड़कर शेष मकड़े जाले पर ही आहार के लिए निर्भर रहते हैं। इसका उपयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये कई प्रकार से करते हैं। जाला बुन सकने वाले मकड़ों के स्वभाव तथा आवास विभिन्न होते हैं। कुछ तो घरों में कोनों तथा छतों में जाला तानते हैं तथा कुछ मैदानों में ही अपना ताना-बाना फैला कर जाल बनाये होते हैं। घरों में बना जाला कुछ मामूली ज्ञात हो सकता है, परंतु बाग-बगीचों में खुले स्थानों, वृक्ष की डालों, झाड़ियों आदि के अवलम्ब से उनके जाले बड़े विशद रूप धारण किये होते हैं। किन्तु रहने के स्थान तथा जाले के आकार-प्रकार में चाहे जो भी भेद हो, सभी मकड़ों में एक समान बात अवश्य ही पाई जाती है कि वे अपने शिकार के फँस जाने पर अपने शरीर से उत्पन्न विष का प्रहार कर निर्बल बना लेते हैं। यह विष मकड़े के विषदंत (दाढ़) के खोखले भाग में संचित होता है। यह बात हमें ज्ञात है कि मकड़ा किसी विष की मार कर बिच्छू की भाँति डरावना जन्तु नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु शिकार रूप में फँसे जन्तुओं को भी यही धारणा रक्खे नहीं पाया जा सकता। उनके छोटे आकार-प्रकार को दृष्टि से मकड़े की दाढ़ से छोड़ा विष घातक सिद्ध होता है। मनुष्य उतने हल्के विष के प्रभाव का अनुभव नहीं कर पाता। किंतु उष्ण प्रदेशों में कुछ मकड़े ऐसे अवश्य होते हैं जिनके विष को मनुष्य पर भी प्रभाव दिखाते पाया जा सकता है।

मकड़े की जातियों का ठिकाना नहीं। कोई छोटा होता है, कोई बहुत बड़ा होता है। वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार से छानबीन कर इनके २५ हजार भेद-विभेदों का ज्ञान प्राप्त किया है। यों तो मकड़ों का मुख्य स्थान उष्ण-कटिबंध के ही देश हैं। परन्तु ध्रुव प्रदेशों तक भी इनका अस्तित्व पाया जा सकता है। अतएव हम यह कह सकते हैं कि संसार भर में जिस किसी स्थल पर जीवन धारण करने के क्षीण साधन भी विद्यमान होते हैं, वहाँ मकड़ा पाया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में कीड़ों के वर्ग में जहाँ षटपदी जंतुओं को रक्खा है, वहाँ मकड़ा अष्टपदी रूप दिखा कर एक समस्या खड़ी कर देता है। कीड़ों का शरीर भी जहाँ तीन भागों में विभक्त मिलता है वहाँ मकड़े का कलेवर केवल दो भाग दिखलाता है। ये विशेषताएँ उसे एक पृथक् वंश में ही रखने के लिए विवश करती हैं जिनमें बिच्छू अलिपका (माइट), चिचड़ी या किलनी (टिंक) आदि हैं। इसे वृश्चिक वंश या मकड़ा वंश कह सकते हैं। इनके शरीर में रीढ़ को कौन कहे, छोटी-मोटी नाम को भी कोई हड्डी नहीं होती।

मकड़े के विस्तृत वंश में अनेक जातियों के मकड़े जाला उत्पन्न करने वाली ग्रंथियुक्त होते हैं। यह तंतु-निर्मायक ग्रंथि तन्तु या जाले को निकालती है। अपनी इस ग्रंथि से वे अपने अंडों के लिए सुन्दर रक्षक थैली भी निर्मित कर लेते हैं। पहली बार केंचुल उतार कर नवजात मकड़ा इन तन्तु-पेटिकाओं या कोयों से निकल कर अपने जनक के अनुरूप शरीर धारण किये दिखाई पड़ता है। अंडे की रक्षकपेटिका या कोयों के अतिरिक्त जाले का ताना-वाना भी मकड़ी के पेट की तन्तु-निर्मायक ग्रंथि द्वारा निर्मित होता है।

मकड़ी का जाला तो सुडौल रूप तथा सुन्दर रचना कहा जा सकता है परन्तु छोटे कीटों के लिए वह यम-द्वार ही होता है। अपने निर्मित कोमल तारों या धागों से यह कीट-पाश ऐसा तन्तु-मय चक्रव्यूह कहा जा सकता है जिससे कोई कीट कभी निकल भाग सकने में समर्थ न हो सका हो। परन्तु मकड़ा इस पाश-बद्धता का रूप विकट करने के लिए तुरन्त ही अन्य उपाय का अवलंब लेता है। वह विष ग्रंथि से विष निकालकर डंक द्वारा तुरन्त ही आखेट की काया में प्रविष्ट कर उसे मूर्च्छना की अवस्था में कर देता है। फिर उस शिकार के रक्त को चूस अपनी उदरपूर्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना उसके लिए कुछ कठिन नहीं होता। परन्तु रक्त तथा रस का हरण हो जाने पर कीट के शरीर की बाहरी ठठरी ही रह जाती है। अपने शिकार को किसी प्रकार निकल न जाने के लिए मकड़ा अपने जाला के तंतुओं पर ही विश्वास न कर अपनी तन्तु-निर्मायक ग्रंथि से नये सूत्र निकाल कर जकड़ कर आबद्ध कर लिये होता है अतएव जब रक्त तथा रस से हीन कीट का शरीर उसके लिए निरर्थक हो जाता है तो वह अपने निर्मित अतिरिक्त तन्तुपाश को फिर उभाड़ लेने का प्रयत्न करता है। तन्तुओं का बंधन हट जाने पर मृत जंतु का कलेवर नीचे गिर जाता है।

स्वर्ण वाटिका मकड़े या मिरांडा औरंटिया नाम के वर्ग का मकड़ा वाटिकाओं में फूलों या डालों पर अवलंबित रह कर अपना जाला खड़े रूप में निर्मित किये होता है। उस जाति की मादा मकड़ी एक इंच लम्बी होती है किन्तु नर मकड़ा तो आकार की दृष्टि से उपहास की वस्तु होता है। वह मादा के आकार का चौथाई ही होता है। जब मादा मकड़ी अपने पौरुष से जाले में नीचे सिर किये प्रतीक्षा करती रहकर किसी शिकार को पा चुकी होती है तो उसे अपने शिकार के रक्त तथा रस का पान कर लेने पर निगोड़े नर पर तरस आती है, इसलिए वह जान कर या अनजाने मृत जन्तु के बचे-खुचे कंकाल को जाले के नीचे गिर जाने देती है। बेचारा नर नामधारी पौरुषहीन, उद्योगरहित मकड़ा इस बचे-खुचे कंकाल पर ही निर्वाह करने का प्रयास करता है।

कपाटपाशी मकड़ा (ट्रैप डोर स्पाइडर) अपनी आखेट क्रिया विचित्र रूप की ही रखता है। यह मकड़ा भूगर्भी दुर्ग की भाँति एक बोतलमुखी गहरी बिल खोद लेता है तथा उसके मुख पर एक दृढ़ कपाट का प्रबंध कर लेता है जो उसकी इच्छा से खुल या बंद हो सकता है। इस कपाट को कब्जे लगे किवाड़ की भाँति खोलने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए ऊपर कर सकना तथा द्वार बंद करने के लिए नीचे गिरा सकना संभव होता है। अनेक वर्षों तक ऐसे विचित्र मकड़े के दुर्ग तथा कपाट-पाश को अध्ययन करने का प्रयत्न वैज्ञानिकों द्वारा हुआ है। यह मकड़ा अपनी बिल के द्वार पर विशद तन्तुजाल का पर्दा बिछा लेता है। उसके ऊपर मिट्टी डाली होने से कपाट का रंग छिप कर साधारण भूमितल का रूप धारण कर लेता है। इस कपाट को मकड़ा अपने पैरों से खोलने या बन्द करने का काम लेता है। बिल की भीतरी दीवाल भी जाले की कोमल तह से मढ़ी होती है। इतनी व्यवस्था कर कपाटपाशी मकड़ा बिल के द्वार पर छिपे हुए घंटों शिकार की टोह में पड़ा रहता है। इस प्रतीक्षा के काल में कपाशपाट को वह कुछ उठा रखता है। कोई भोला-भाला अनजान कीट जब उसके कपाटपाश के पास पहुँचने लगता है तो क़ीट-कंपन से मकड़े को उसके आगमन की आहट मिल जाती है। अतएव तत्काल ही वह उपयुक्त अवसर देखकर अपने आखेट पर ऐसा झपट्टा मार बैठता है कि उसके छिप्रवेग को हमारे नेत्र देख भी नहीं पा सकते। बिल के अन्दर छिपा रहने वाला यह वंचक मकड़ा बिल के बाहर ही तक आ पहुँचे कीट को अपना सहज आखेट बना लेने में अपनी कपाटपाशीय युक्ति से सफल हो पाता है।

कपाटपाशी मकड़े को केलिफोर्निया में दो वैज्ञानिकों ने दस वर्षों तक अपने अध्ययन का विषय बना कर विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। इन नन्हे जन्तुओं में मादा कपाटपाशी मकड़ी के क्षुद्राकार की अपेक्षा अत्यधिक शक्ति का प्रदर्शन हमारे बड़े ही विस्मय की बात है। जब उसके बिल का कपाटपाश बंद रहता है तो वह अपने दृढ़ बोझिल कपाट के अधोतल के दो छिद्रों को अपने दाँतों से जकड़े रहती है तथा अपनी टाँगों को बिल की दीवाल से चिप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काये रहती है। इस परिस्थिति में वह एक पसेरी (पाँच सेर) तक के खिंचाव को निष्फल कर सकने में समर्थ होती है। एफ० ई० बेक तथा सी० पैससोरे नाम के कैलिफोर्निया के वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से यह घोषित किया है कि इस कपाट-पाश में एक बड़ा कब्जा होता है। यह कपाटपाश एक जल-अभेद्य काग का ढक्कन होता है जो नम मिट्टी से निर्मित होता है। उसके पार्श्व भागों तथा अधोभाग में जाले की तह मढ़ी होती है। वैज्ञानिकों ने इस कपाटपाश के बनने की क्रिया का अवलोकन करते हुए यह सोच कर विस्मय करना प्रारम्भ किया कि बेचारी मकड़ी किस युक्ति से कब्जा बना सकती होगी। किन्तु मकड़ी ने इसे सरलतया ही बना लिया। उसने आंशिक बने कपाट को कुछ उठाकर खड़े रूप में पीछे की ओर मोड़ दिया। यह नम मिट्टी निर्मित आंशिक कपाट मरोड़ने से द्वार के छोर पर एक सीधी पंक्ति में फट पड़ा परन्तु जाला की पुनर्वर्द्धक तह ने उसे सर्वथा पृथक् हो जाने से रोक दिया। उसका संबंध बिल के भीतरी तल से बना ही रहा। यह बंधन एक विचित्र रूप का दृढ़ कब्जा बन सका।

अपने इतने कौशल से बनाये बिल के कपाटपाश को ऊपर से पहचाने जाने योग्य न रखने के लिए छद्मरूपीय तल आस-पास के स्थल की ही भाँति बनाकर कपाटपाशी मकड़ी यह भी भली-भाँति जानती है कि किसी शिकार को फँसा सकने के लिए किस उपयुक्त क्षण पर कपाट खोलकर छलांग मारनी चाहिये। अद्भुत कौशल, वीरता, त्वरावेग तथा सतत क्रियाशीलता का जीवन कपाट-पाशी मकड़ी को बड़े ही सफल जीवंत जीव-जंतुओं की श्रेणी में गिना जा सकता है। एक बार पकड़ कर अपनी नौ इंच गहराई की बिल के पेटे में किसी भी प्रकार के कीट को आबद्ध कर कपाट-पाशी मकड़ी मनमानी उदरपूर्ति कर सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपाट पाशी मकड़ी के कपाट को एक दृढ़ ब्लेड (क्षुद्र चाकू के फलक की भाँति पतली पत्ती का दाढ़ी बनाने वाला फलक) से उठाने का प्रयत्न कर उसे मुड़ कर बिल्कुल टूटते-टूटते ही अनुभव किया जाता रहा। इतना बल लगा कर उठने वाले कपाट पाश के द्वारा इस मकड़ी के बिल का मुख बन्द हो जाय और वह बाहर ही पड़ी रह जाय तो उसे फिर खोल सकना उसकी शक्ति से भी बाहर की बात होती है। अतएव कपाट-पाशा मकड़ी बहुत ही सावधान रहती है। वह अपने बिल से बाहर निकलने पर भी अपनी दो पिछली टागें तथा धड़ का कुछ भाग कपाट के नीचे ही किये रहती है।

जीवन-संघर्ष में भोजन की चिन्ता में कीट-पतंगभक्षी पक्षियों को वर्ष भर हजारों मील का चक्कर मार कर अपना उदर भरने के लिए विवश होना पड़ता है। परन्तु पनडुब्बी पक्षी मछली के आहार पर ही निर्भर रहता है अतएव इसे पानी में डूबने की कुशलता प्राप्त होती है। जलकाक या पनकौआ (कोरमोरेंट) नाम से ज्ञात यह पक्षी संसार भर के देशों में पाया जाता है। कुछ जातियाँ तो समुद्रतटीय जीवन व्यतीत करने वाली होती हैं, तथा कुछ नदी तथा सरोवर तटीय जीवन यापन करने वाली होती हैं। इन सब की ऊपरी रूपरेखा श्याम वर्णीय होती है। शरीर के ऊर्ध्व भाग के पर श्याम रंग के होते हैं, अतएव पक्षी को दूर से देखने पर श्याम वर्णीय अनुभव किया जा सकता है, किंतु इनकी दुम गहरे हरे या नीले रंग की होती है। इनको कहीं शिलाखंड पर सुखाते देखा जाय, या मछली का आखेट करते अवलोकन किया जाय अथवा अपने नवजात शिशु की उदर पूर्ति के लिए मछली का चारा मुँह में भरे उतावले रूप में अपने घोंसले की दिशा में उड़ भागते ही पाया जाय, इन सब स्थितियों में इसकी धड़ लम्बोतरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोतल की भाँति दिखाई पड़ने से इनको सहज ही पहचाना जा सकता है।

इनकी पतली लम्बी गर्दन भी पहचानने में कोई भ्रम नहीं होने दे सकती। जब ये उड़ान भर कर घोंसलों को वापस जा रहे हों तब तो इनकी गर्दन पूर्णतः लम्बी फैली ही दिखाई पड़ सकती है। ये पक्षी अन्य समुद्री पक्षियों से विभिन्न व्यवस्था रख अपने अंडे को सेने के लिए टहनियों तथा समुद्री शैवाल के घोंसले निर्मित करते हैं। जब अंडे से बच्चा बाहर हो जाता है तो ये अपने अवश बच्चे को वयस्क होने या स्वयं पूरी मछली निगल सकने लायक न हो जाने तक अपनी चोंच में उनका मुख डाल कर चारा पहुँचाने का प्रयत्न करते ही रहते हैं।

जलकाक का जलगर्भी अभियान (गोताखोरी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ जलकाकों (कॉरमोरेंट) को पानी के तल से छलांग भर कर भीतर जाने की भाँति उद्योग कर फिर अपने झिल्लीपटसम्बद्ध चञ्चुलों वाले पैर से पानी को पीछे या ऊपर की ओर फेंक कर सपाटे से आखेट का पीछा कर नीचे पहुँचते देख सकते हैं, किंतु कुछ जलकाकों को अपने आखेट तक जलगर्भ में अविलम्ब पहुँचने के लिए किसी तटीय उत्तुंग शिला से ही नीचे छलांग मारते गोता लगाते देखा जाता है। पानी के भीतर जलकाकों को यथेष्ट समय तक डूबे रह सकने की क्षमता होती है।

आहार सामग्री प्राप्त करने के जन्तुओं के सफल प्रयास तथा कौशल से पूर्ण लाभ उठाने में चालाक मनुष्य बड़ा ही सिद्धहस्त है। जलकाक की मछली पकड़ने की कुशलता से भी लाभ उठाने का प्रयत्न चीन तथा जापान के लोगों ने व्यापक रूप से किया है। वे जलकाक के गले को पट्टे से इस प्रकार आबद्ध कर देते हैं कि वह पानी में छोड़े जाने पर सहज ही मछली तो पकड़ सके, परन्तु पकड़ी हुई मछली उसके गले से नीचे न उतर सके। ऐसी विधि से बाँध कर एक-एक दर्जन का झुंड लेकर चीनी या जापानी समुद्र में नौकाओं पर जाते हैं। उनके ये पालतू जलकौवे भरपूर मछलियाँ पानी के अन्दर पकड़ लेते हैं। गला भर आने पर उन्हें ऊपर खींच लिया जाता है तथा युक्ति से उनके गले की मछलियाँ बाहर उगलवाने के लिए विवश किया जाता है। बेचारे अबोध जलकाक अपने उद्यम से प्राप्त मछलियों के भंडार को अपने स्वामियों के हाथ सौंप देने के लिए लाचार होते हैं, परन्तु दुबारा पानी में छोड़ते ही वे बार-बार मछलियों के भंडार अपने अवरुद्ध गले में एकत्र करने का प्रयत्न करने में कभी भी आना-कानी नहीं करते जान पड़ते। पशुबुद्धि के भोलेपन से इस प्रकार चतुर पुरुष पूर्ण लाभ उठाता है।

इससे भी अधिक लाभ उठाने का सुलभ अवसर हमें दक्षिणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमेरिका के प्रशान्त, महासागर तटीय प्रदेश में देखने को मिलता है। उसके लिए मनुष्य को किसी छल-छद्म या कौशल की आवश्यकता नहीं होती। वह सहज ही प्राप्त हो जाता है। यह लाभ की वस्तु खेतों के लिए बहुमूल्य खाद है। पेरू देश में जहाँ पूर्वकाल में इंका लोगों का राज्य प्रसारित था, आज भी निर्जन स्थल पाये जाते हैं। वहाँ पर जलकाकों का समुदाय एक-दो नहीं, दो-चार नहीं, बल्कि लाखों की संख्या में कहीं एकत्र रहते पाया जाता है। ऐसे स्थल मरुभूमि सदृश अनावृष्टि के वातावरण वाले ही हैं। समुद्र-तटीय भूमि, चट्टानों तथा तटीय जल नौकाओं पर इस उर्वर खाद की तह बड़ी मोटी जम जाती है। यह खाद ग्वानो नाम से प्रसिद्ध है जो ग्वानो नाम की जाति के जलकाकों का विष्ठा-निर्मित पदार्थ है। सहस्रों वर्षों से ये बहुसंख्यक जलकाक वहाँ पर ही स्थल-स्थल पर भारी झुंडों में बसेरा लेते आये हैं, अतएव दीर्घकालीन संचय से ग्वानो की मोटी तहें जम कर मनुष्य को असीम लाभ पहुँचाने को प्रस्तुत हैं।

प्राचीन समय से उल्लू एक विशेष प्रसिद्ध पक्षी कहा जा सकता है। हमारे देश में इसे लक्ष्मीवाहन कह कर उच्च पद देने का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु उल्लू का प्रचलित नाम मनुष्यों की विवेकहीनता का बखान करने पर ही प्रयुक्त किया जाता है। उलूक के मूर्ख माने जाने या अपशकुन का आधार मानने की बात तो परम्परा तथा आस्था की बात ही हो सकती है। अतएव विज्ञान को उससे कोई विवाद नहीं, किंतु इसके गुण, स्वभाव, आकार-प्रकार आदि का अध्ययन कर उल्लेखनीय बातें ज्ञात हो सकी हैं।

घुग्घू या प्रावार कर्ण उलूक की विशेष चर्चा पाई जा सकती है। इसके रात्रिचारी रूप में बृहदाकार कर्णशिखा तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्जारवत् नेत्र को देख कर किसी लेखक ने इसे पक्षधारी सिंह

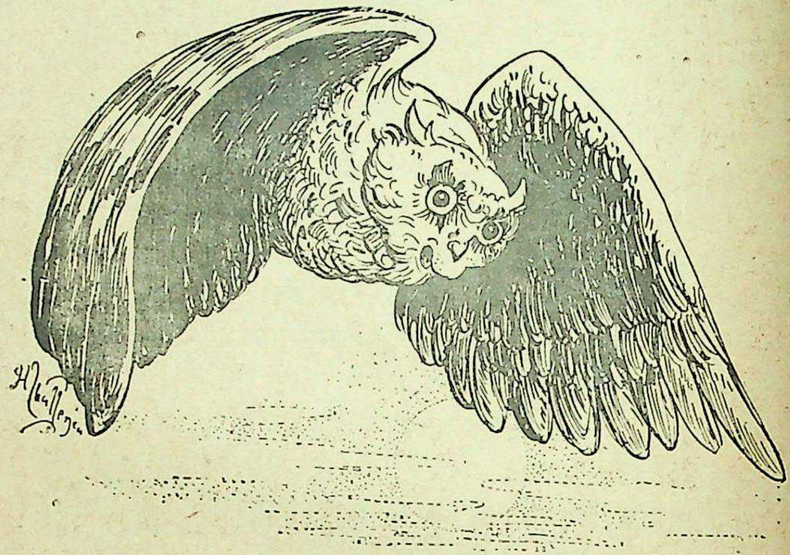

घुग्घू या प्रावार कर्ण उलूक

नाम देने का प्रयत्न किया है। वास्तव में आखेट के लिए पौरुष दिखाने में हिंसक पक्षियों में उलूक का कोई जोड़ नहीं है। यह सबसे भयानक पक्षियों में से एक कहा जा सकता है। कभी-कभी इसे मार्जार उलूक भी कह दिया जाता है। इसका प्रसार दूर देशों तक पाया जा सकता है। यह अनेक वातावरणों में जी सकने में समर्थ होता है।

एक प्रावारकर्ण उलूक लम्बाई में दो फीट पाया जाता है जिसके पंखों का फैलाव पाँच फीट तक होता है। अन्य उलूकों की भाँति इसके पर लम्बे तथा रोएँदार होते हैं तथा भूरे रंग की विभिन्न पट्टियों से आभूषित होते हैं। इसके डैने के पक्षदंड नर्म छोरयुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते हैं, अतएव यह जब अपने शिकार पर झपट्टा मारता है तो बिना किसी प्रकार के आहट के ही आखेट तक आ धमकता है। यह अपने चङ्गुल में ही शिकार को दबा कर ले भागता है। इसके खाद्य जन्तुओं में भूमिचारी, आकाशचारी या जलचारी कोई भी जीवजन्तु केवल चङ्गुल में फँसने का सुभीता दे सके तो उसे दबोच कर अपना आहार कर लेने में संकोच नहीं करता। अपेक्षाकृत बहुत बड़े आकार के जन्तु पर वह प्रहार नहीं करता, परन्तु खरगोश, बत्तख आदि पर सहज ही आक्रमण कर शिकार बना लेता है।

प्रावार कर्ण उलूक के नेत्रों पर दुहरी आच्छादक झिल्ली लगी होती है जिससे रात को अँधेरे में उड़ने पर कहीं डाल-पात की बाधा आ सकने में उसकी चोट से नेत्रों को क्षति न पहुँचे। ऐसी अवस्था में दुहरी पारदर्शक झिल्ली की ऊपर मढ़ी पट्टी विशेष रक्षक होती है। उल्लू के नेत्र तथा कान दोनों ही शक्तिशाली होते हैं। बड़ी-बड़ी आँखें उसे रात को देख सकने में समर्थ बनाती हैं किंतु एक दोष यह होता है कि उसके नेत्र केवल सामने ठीक सीध में ही देख सकते हैं। अतएव किसी भी दिशा में या ऊपर नीचे की वस्तु देखने के लिए उसे पूर्ण सिर घुमाना पड़ता है।

धनेश या महावाध्रीणस (ग्रेट हार्न बिल) वृक्षजीवी पक्षी है, परन्तु अफ्रीका में अबीसिनिया के धनेश भूजीवी पाये जाते हैं। भूजीवी धनेश भूमि पर ही जीवन व्यतीत कर सकने के साधनों से युक्त होता है। यह कीड़े-मकोड़े, चूहे तथा गिरगिट खाकर उदर-पूर्ति करता है। अन्य धनेशों की भाँति इसकी मुख्य विशेषता चोंच का अधिक विकसित रूप होता है जो खोखली होती है तथा उसमें नासा भाग में एक उभाड़ या टोप का रूप मिला ज्ञात होता है। सामने की ओर इस उभाड़ या सिरस्त्राण का मुख खुला होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूजीवी धनेश (या गरुड़) एक वृहदाकार पक्षी होता है। इसकी लम्बाई ३ फीट से अधिक होती है तथा पंख श्यामवर्णीय होते हैं किंतु मुख का खुला भाग रक्तवर्णीय होता है तथा आँखों के चारों ओर हरी धारी होती है। इसके पैर दीर्घाकार तथा पुष्ट होते हैं। यह आहार प्राप्त करने में बड़ा निर्भय होता है। साँप को भी मारने में अभ्यस्त होता है। अपने पंखों को मोड़ कर अपने मुख की रक्षक ढाल-सी बनाकर वह साँप पर आक्रमण करने पर उसके प्रत्याक्रमण से अपनी रक्षा कर लेता है। इस वलिष्ठ तथा दीर्घ चंचु पक्षी के मुख में चूहे-चूहियों के पहुँचने की घटना तो एक तुच्छ बात ही समझ सकते हैं। सृष्टि में जीव ही जीव का आहार बनने का क्रम सर्वत्र ही पाया जाता है। अतएव हमें यह वीभत्स कृत्य प्रतीत न होना चाहिए।

समय तथा परिस्थितियों के बदलने से कितने ही जन्तुओं को अपना स्वाभाविक जीवन का आधार परिवर्तित कर किसी अन्य आधार से जीवित रहना पड़ता है। आज जो स्थलचारी हैं, वह कल जलचारी होने के लिए विवश या उत्सुक हो सकते हैं। इसी प्रकार जलचारी कभी व्योमचारी या स्थलचारी बनता पाया जाता है। हम केकड़े को जलचारी जन्तुओं की श्रेणी का समझते हैं, परन्तु कितनी ही केकड़े की जातियाँ पानी से दूर जाकर कहीं भीटों या स्थल में स्थायी रूप से निवास करने लगती हैं। इनको केवल सन्तान-उत्पत्ति की चिंता में जल का आधार ग्रहण करना पड़ता है। इसके कड़े स्वभाव में हम उन परिवर्तनों को हुआ देखते हैं जो स्थल जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक बातें होती हैं। हम यहाँ पर जल तथा स्थल जीवन के विकास तथा रूपान्तर की कथा कहने नहीं बैठ सकते, परन्तु पानी के अंदर चलने-फिरने तथा साँस लेने की जो विधियाँ होती हैं, वे ही स्थल पर काम नहीं दे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकतीं। खुले आकाश के उन्मुक्त पवन को ग्रहण करने के लिए फेफड़ा आवश्यक हैं, पानी के अंदर हमें गलफड़े यह काम कुछ भिन्न ढंग से करते दिखाई पड़ते हैं। जलचारी जीवन से थक या ऊब कर स्थलचारी बनने वाले जीवों में हम फेफड़े का उद्भव देखते हैं। केकड़े को इस कठिनाई के निराकरण की सुविधा वंश-परंपरा से मिली होगी, परंतु वह विकास कितनी ही पीढ़ियों से चलता आकर हो सका होगा। अतएव आज केकड़ा सफलतापूर्वक स्थल जीवन व्यतीत कर ले जाता है। उसे इस जीवन में कोई भारी बाधा नहीं प्रतीत होती। इन भूतल जीवी केकड़ों को हम शिकार की खोज में अपने बिल के द्वार से ताक लगाये रहने में बराबर सन्नद्ध पाते हैं। इस जागरूकता से ही उन्हें उदर-पूर्ति का अवसर मिलता है।

भूमिचारी केकड़ा के नर को वयस्क हो जाने पर विकराल चङ्गुल विकसित किये पाया जाता है जिनसे वह शिकार के जंतुओं को सहज ही दबोच बैठता है। किंतु कितने ही अवसरों पर अपने शिकार से प्रतिद्वन्द्वी की भाँति उसे संघर्ष भी करने के लिए बाध्य होना पड़ सकता है। इसमें उसे अंग-भंग होने के भी अवसर आ सकते हैं। इस प्रकार क्षत भुजाओं की पूर्ति के लिए केकड़े की अतिरिक्त शक्ति ही यथेष्ट होती है। वृक्षों के पत्तों तथा डाल की भाँति इसकी नष्ट भुजाओं की जगह नयी भुजा निकल आती है। इसके लिए नवोत्पत्ति का दृश्य उसके केचुल बदलने पर देखा जा सकता है। पुरानी केचुल या ऊपरी खाल उतार फेकने पर नीचे से उसका जो नवीन कलेवर उद्भूत होता है उसमें क्षत भुजा या चंगुल की स्थानापन्न नयी भुजा निकली दिखाई पड़ती है। परन्तु वह पूर्व आकार की तुरन्त ही नहीं होती। कई बार केचुल बदल जाने पर वह औसत आकार प्राप्त कर सकने में समर्थ होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केकड़ा की केंचुल कड़े पदार्थ से निर्मित एक दृढ़ खोल-सी होती है। शरीर की आकारवृद्धि पर यह खोल वृद्धि नहीं करती, अतएव

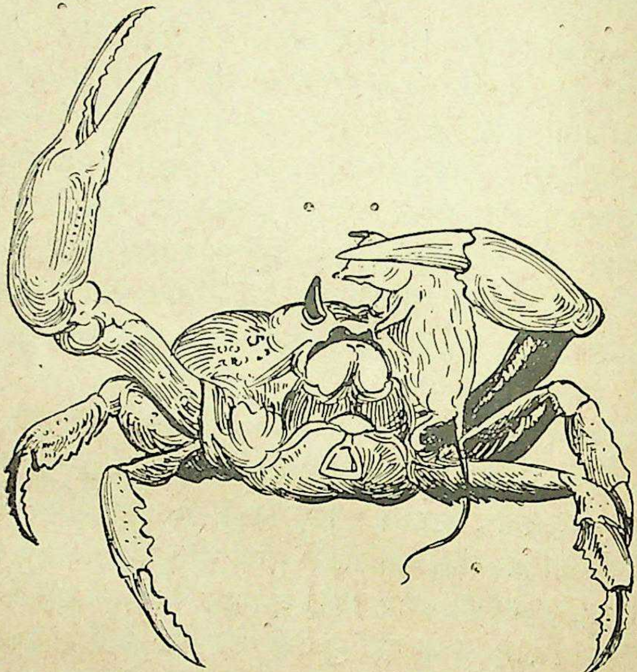

केकड़ा

उसे अपनी इस खोल को उतार देना आवश्यक जान पड़ता है। इसी को केंचुल बदलना कह सकते हैं।

एक दूसरा केकड़ा भूजीवी ही नहीं होता, बल्कि वृक्षारोही भी होता है। इसको लुटेरा केकड़ा (बिरगुज लैट्रो) या नारिकेल कर्क नाम दिया जाता है। यह नारियल के ऊँचे वृक्ष पर सुगमतया चढ़ जाता है तथा किसी क्षत या दरार फटे नारियल को अपने प्रबल चंगुलों से दो टूक कर देने में समर्थ होता है। इसको नारियल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत ही प्रिय वस्तु ज्ञात होती है। किन्तु इस किंवदन्ती में तथ्य नहीं ज्ञात होता है कि यह समूचे, अक्षुण्ण नारियल को तोड़कर दो टूक कर सकता है। वास्तव में कुछ क्षत या दरार फटे नारियल को ही फोड़ सकना इसकी शक्ति की बात होती है। वैज्ञानिकों ने कई बार परीक्षण कर देखा है कि केकड़ा भूखों मरता रह जाता है किंतु समूचे, अटूट नारियल को समीप में रहने पर भी वह तोड़कर अपनी उदर पूर्ति कर सकने में असमर्थ पाया जाता है। सी० ए० गिब्सन हिल नाम के वैज्ञानिक ने एक केकड़े को कई बार भूखा रखकर नारियल फोड़ने के लिए उसे विवश कराना चाहा परन्तु वह असफल ही रहा। एक अन्य स्थान पर तीन केकड़ों को महीने-डेढ़ महीने तक भूखों रहते पाया गया परन्तु वे अक्षुण्ण नारियल को न फोड़ सके। किन्तु अधटूटे नारियल को फोड़ना भी चंगुलों की शक्ति प्रदर्शित करने के लिए उल्लेखनीय बात है। उसके वृक्षारोहण की प्रवृत्ति को देख कर तो घोर आश्चर्य ही होता है। पता नहीं उसके पूर्वजों ने कब, किन स्थितियों में इस गुण को प्राप्त किया। यह अनुमान किया जा सकता है कि जलखंड से दूर के स्थल पर भोजन प्राप्त करने में निश्चयात्मक सफलता मिलने के लिए ही केकड़े को अपने पौरुष तथा कौशल की परीक्षा करने के लिए वृक्ष पर चढ़ने का अभ्यास करने का दुस्साहस हो सका होगा। उस कुशलता में दक्ष होने के लिए उसे कदाचित् कई पीढ़ियाँ लग गई होंगी। किंतु आज का यह जलचर रूप से परिवर्तन कर स्थलचर जीवन व्यतीत करने वाला नारिकेलप्रिय कर्क बहुत सुविधा-पूर्वक वृक्ष के शिखर पर नारियल की स्वादिष्ट गरी प्राप्त करने की आशा से चढ़ा पाया जाता है।

लुटेरा या नारिकेलभक्षी केकड़ा योगी केकड़ा के अनुरूप होता है। यह आकार में वयस्क अवस्था में चलने वाले पैरों के प्रथम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोड़े के छोरों से शरीर के पिछले सिरे तक लगभग तीन फीट लंबा होता है। इसके शरीर का भार ढाई-तीन सेर तक होता है। इसके शरीर की रचना इस प्रकार होती है कि इसकी रक्षा हो जाती है। इसका उदर गले के नीचे झुका होता है जिसके ऊपर एक शृङ्गीय पट्टिका मढ़ी होती है। अतएव वह ढाल का काम दे जाती है। यह केकड़ा भारत तथा प्रशान्त महासागर के उष्णखंडीय छोटे-छोटे द्वीपों में व्यापक रूप से पाया जाता है।

अपने आखेट के जीव पर अधिकार पाने के लिए अपने डंक से विषरस के प्रहार द्वारा मूर्च्छित कर देने की विधि क्षुद्र जंतुओं में एक साधारण बात ही है। विवरवासिनी बर्रे को हम ऐसी ही विधि से भुनगे पर अधिकार पाते देखते हैं। वह डंक मार कर मूर्च्छा की अवस्था लाने तक ही विष का उपयोग करती है तथा उस पर अधिकार जमा कर अपने विवर में ले भागती है। विवर में पहुँच जाने पर भी वह भुनगा केवल मूर्च्छित अवस्था में ही रहता है, मृत नहीं हुआ रहता। विवर की कोठरी में इस आखेट रूप में प्राप्त अर्द्धजीवित भुनगे को मूर्च्छित रख कर उसके ऊपर विवर-वासिनी बर्रे अपने अण्डे देती है। फिर वह कोठरी का द्वार मिट्टी से बन्द कर देती है। अंडे से इल्ली उत्पन्न होने में तीन दिन लगता है। इतने समय तक भुनगे का मांस ताजा ही रहता है। उसे इल्ली खा कर एक खोल बनाकर जाड़े भर उस कोए या खोल के अन्दर पड़ी रहती है। अंत में वह बर्रे रूप में ही आविर्भूत होकर पुनः नई पीढ़ी की रचना के कार्य में संलग्न होकर अपनी मिली हुई थाती को संतान-वृद्धि रूप में आगे बढ़ाकर अपने जनक बर्रे की क्रियाओं की पुनरावृत्ति करती है। शक्ति प्राप्त हो जाने से वह विवर के बंद मुख को किस निर्देश तथा अनुप्रेरणा से खोद कर खुला कर लेती है। इसका ज्ञान हमें कोई भी वैज्ञानिक नहीं करा सकता, परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्पनाओं के आधार पर हम यह बात समझने में देर नहीं लगा सकते कि प्रकृतिदत्त अनुप्रेरणा हमें सृष्टि में सर्वत्र ही जीवों को जन्म धारण करने, वृद्धि पाने तथा जीवित रखने के लिए सन्नद्ध करती है, उसी प्रकार की कोई भावना उसके नवजात कलेवर के अंततम में उठकर उसे द्वार खोल कर विस्तृत संसार अपने सम्मुख उपस्थित देखने के लिए मार्ग निर्देश कर सकती होगी।

जीवित जन्तुओं का आखेट कर अपनी जीवन-रक्षा करने वाले जीवों की कहानी तो शौर्य तथा कौशलपूर्ण है ही, परन्तु कुछ जन्तु मृत जीवों के शव पर भी निर्वाह कर सकते हैं। गुबरैला ऐसे ही मृत-जीवी जन्तुओं में है। किन्तु यह केवल अपनी ही उदरपूर्ति के लिए ही शव का अवलम्ब नहीं लेता, बल्कि अपनी नवीन उत्पन्न होने वाली संतान के लिए भी यथेष्ट आहार संचित करने के लिए उद्यमशील दिखाई पड़ता है।

गुबरैले (नेक्रोफोरस) में अद्भुत गंध शक्ति होती है। वे सूँघ कर किसी दूर के स्थान पर मृत जंतु रूप में अपना खाद्य होने का आभास पा जाते हैं। चूहे-चुहियाँ, छछूँदर तथा चिड़ियाँ मरी होने पर अपनी दुर्गंध से इन्हें तुरन्त अपने शव की ओर आकर्षित कर लेती हैं। इस शव को समाधिस्थ करने के लिए गुबरैले का दल तुरन्त ही उसके अधोतल की भूमि खोदना प्रारम्भ करता है। अतएव नीचे की मिट्टी खोद कर खिसकाने से शव धसता जाता है। ऊपर से मिट्टी गिरा देने से समाधि ही बन जाती है। खुदाई करने के लिए गुबरैला अपने पैरों से ही काम लेता है किन्तु खोदकर शिथिल की हुई मिट्टी वह अपने सिर से ऊपर या दूर ढकेल देता है। जब शव को मिट्टी में छिपाने योग्य खुदाई हो जाती है तथा ऊपर से शिथिल मिट्टी की तह गिरा कर ढक दिया जाता है तो नर गुबरैला के इन प्रयत्नों के बाद मादा गुबरैला की बारी आती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह इस समाधिस्थ शव के बीच अपने अण्डे देती है। उन अंडों से इल्ली निकल कर शव के नम तथा सड़ते मांस का आहार कर कुछ समय में अपना कलेवर बढ़ाकर वयस्क गुबरैले का आकार धारण करती है। मृत बनने पर निरर्थक हुए शरीर के रक्त मांस का भी उपयोग कर नव-जीवन के संचार में सहायता प्राप्त करने वाला गुबरैला सृष्टि का आर्थिक पहलू सुधारने वाला जीव कहा जा सकता है।

आहार प्राप्त करने के उद्योग में हम समुद्र की कितनी ही मछलियों को समुद्र तल पर ऊँची कुलाँच मार कर उड़ने का अनुकरण करने का वर्णन सुनते हैं। वे पानी के ऊपर भी उछाल मार कर अपने उदर की ज्वाला को शान्त करने के लिए किसी कीड़े, पतिंगे पर आक्रमण करती होंगी, परन्तु एक मछली की व्यवस्था तो अति ही विचित्र दिखाई पड़ती है। इसका नाम धनुर्धर मत्स्य (आर्चर फिश) रक्खा जा सकता है। यह अपने मुख रूप धनुष से जल-रूप तीर की मार जलतल के ऊपर लटकी दिखाई पड़ने वाली किसी डाल-टहनी पर बैठने वाले कीट-पतङ्ग या जल के ऊपर उड़ कर जाने वाले कीड़े पर करती है। बेचारा क़ीट अप्रत्याशित आक्रमण से विह्वल हो जल से लथपथ होकर पानी में गिर जाता है। फिर उसे अपने उदर में कर लेना धनुर्धर मत्स्य के लिए खिलवाड़ ही हो सकता है। शिकार पकड़ने की यह सूझ कितनी विचित्र तथा निराली है। यह कौशल दिखाने वाली धनुर्धर मछली एशिया के अलवण जलखंडों (नदी, तालाबों आदि) में होती है। यह तैर कर जलतल के निकट पहुँच कर आखेट की प्रतीक्षा में पड़ी रहती है और अवसर आते ही फुहार छोड़ कर ऊपर उड़ते दिखाई पड़ने वाले या कहीं वनस्पतियों पर विश्राम करने वाले कीट पतङ्ग को जलशायी कर नित्य अपनी उदरपूर्ति करते रहने से जीवन-क्रम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उड़ाकू गिरगिट (पृष्ठ ४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

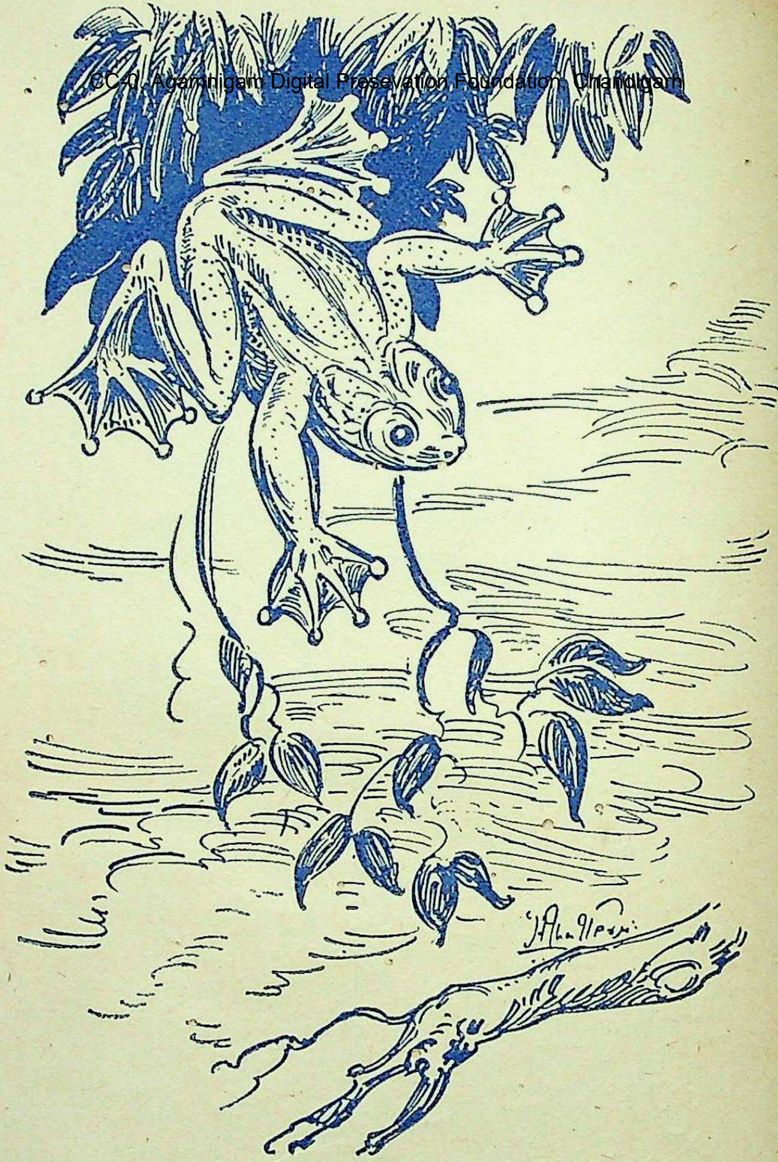

उड़ाकू मेंढक (पृष्ठ ७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

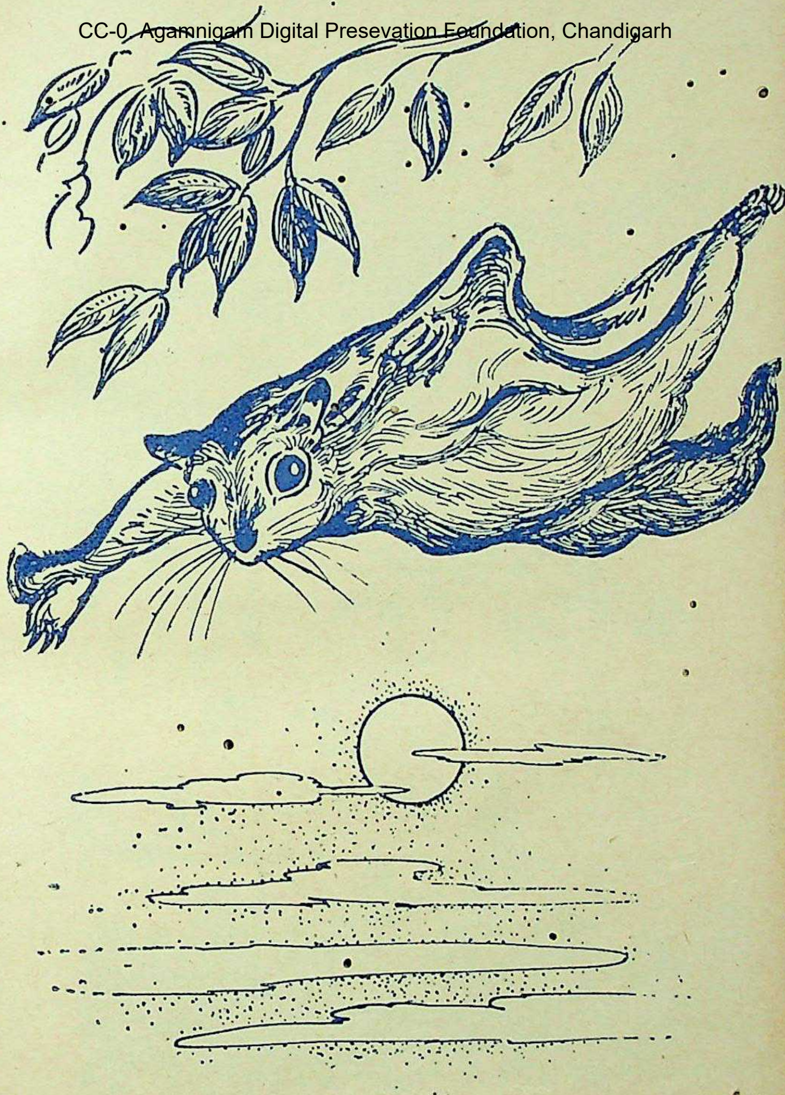

उड़ाकू गिलहरी (-पृष्ठ १२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

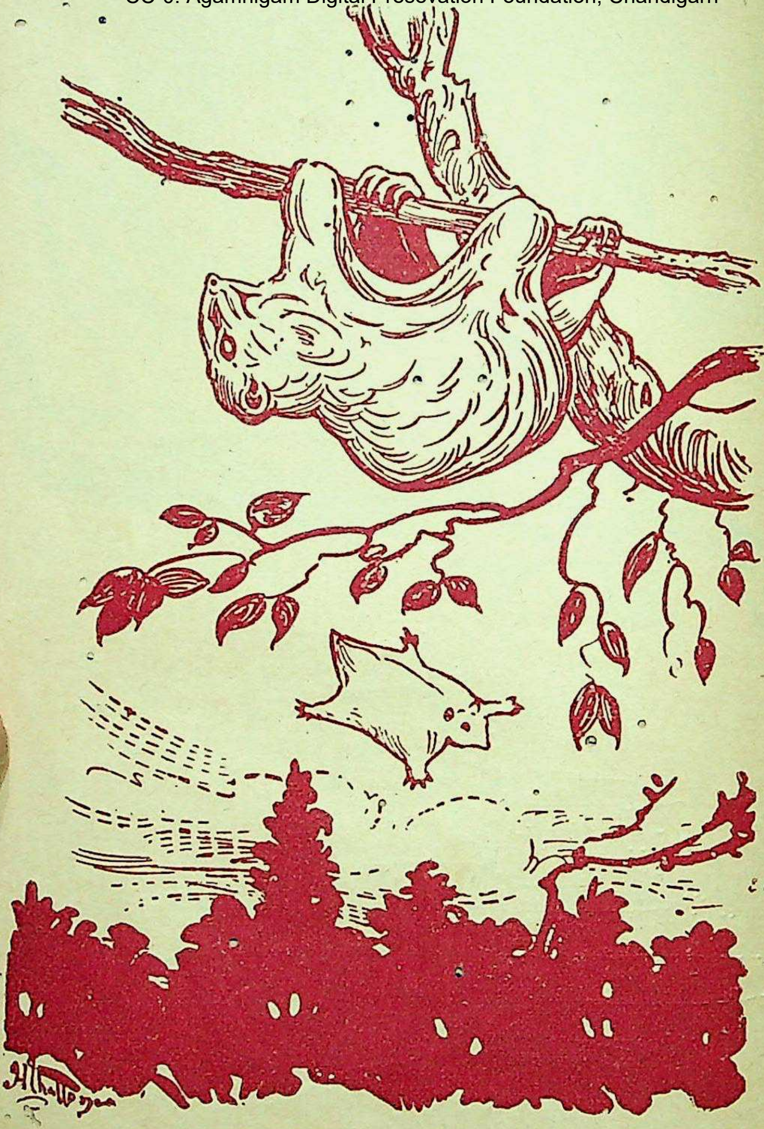

केगुआन या कोबेगो (उड़ाकू लेमूर) (पृष्ठ १६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

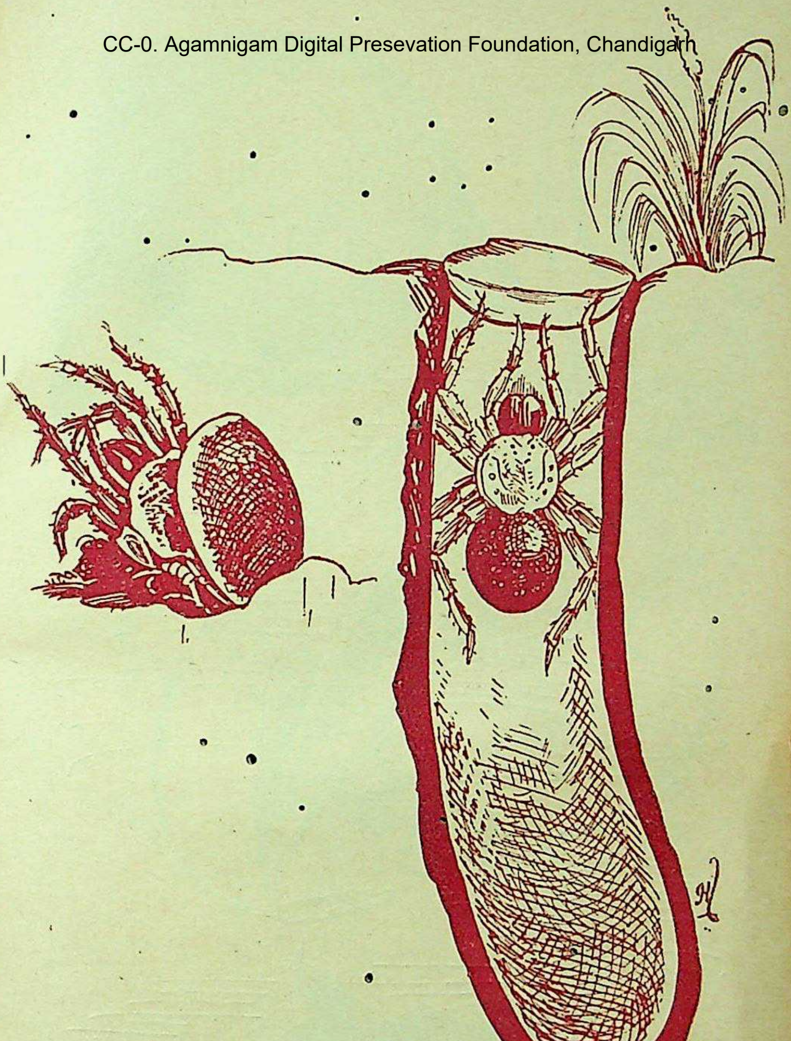

द्वार पाश्वीय मकड़ा (पृष्ठ ५२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

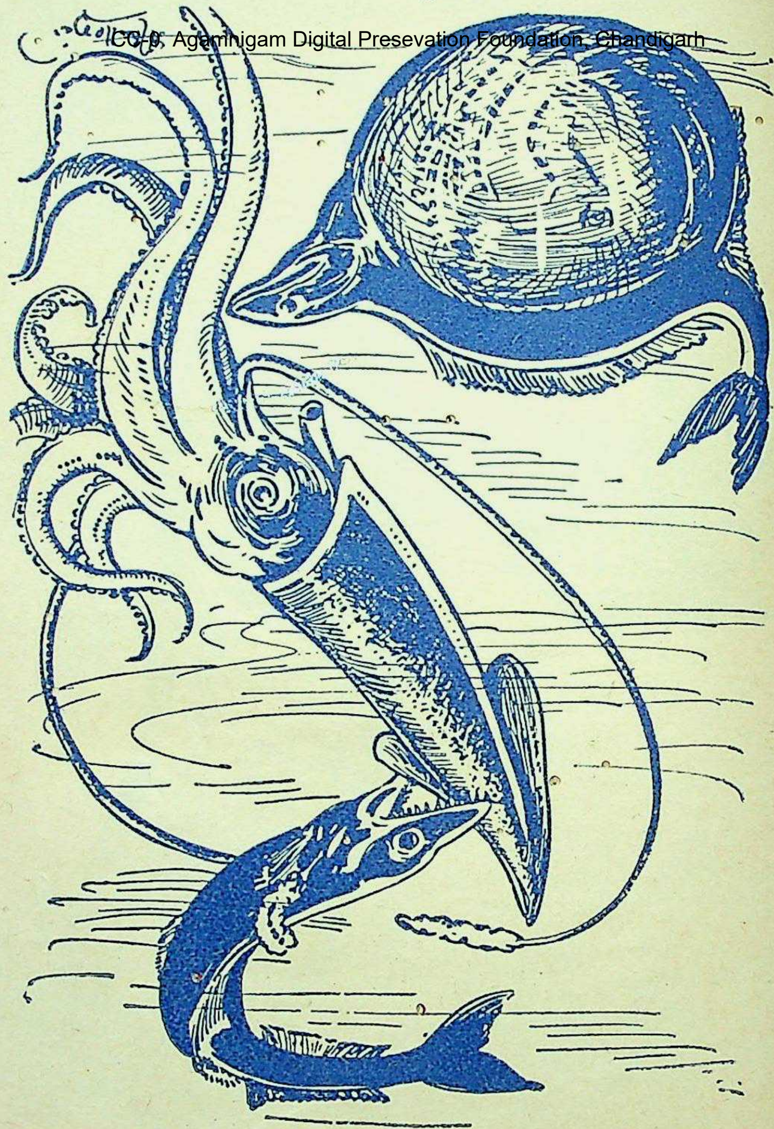

श्याम भक्षक मत्स्य (पृष्ठ ६७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

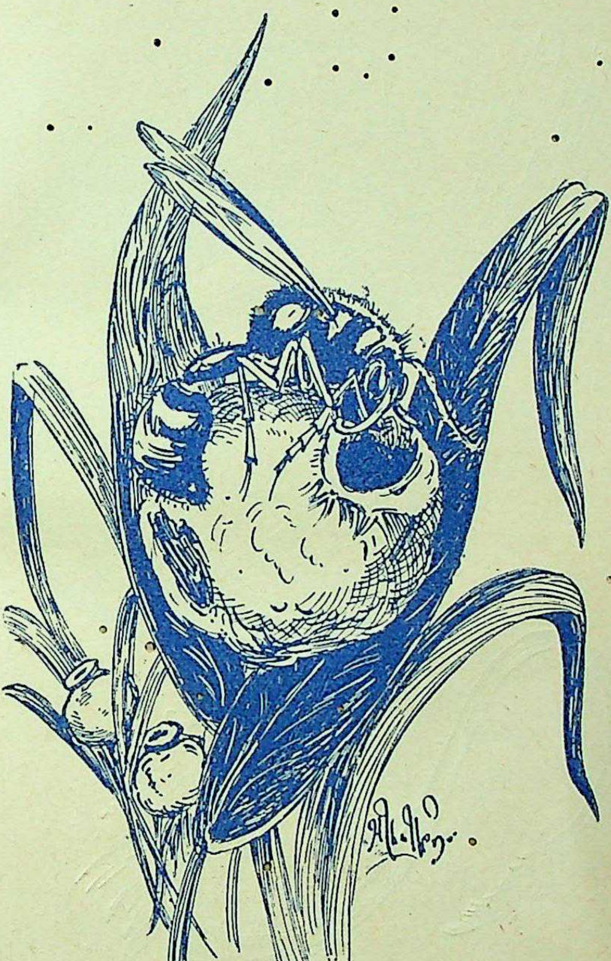

एकाकी जीवी बर्रें (ततैया) का घटनुमा घोंसला (पृष्ठ ८८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टार्सियर (पृष्ठ १०३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चलाती रहती है। उसके फुहार की मार अचूक होती है। निशाना साध कर ठीक आखेट के ऊपर ही जल की फुहार जाकर गिरती है। यदि ऐसी युक्ति न होती तथा निशाना ठीक बैठ न सकता तो उन कीट-पतङ्गों का पा सकना इसके लिए एक सर्वथा असम्भव कार्य ही होता। ये मछलियाँ तीन से आठ इंच तक लम्बी पाई जाती हैं। बड़ी धनुर्धर मछलियों को बारह फीट दूरी तक जल की फुहार फेंक सकने में समर्थ पाया जा सकता है। ऐसी मछलियों को जल-जंतुशालाओं में पाला जाता है। हाथ में खाद्य वस्तु लेकर उनके सामने जलाशय के ऊपर रखने पर धनुर्धर मछली की धनु-र्विद्या या जल की फुहार फेकने की कला का अवलोकन किया जा सकता है। यदि हाथ में खाद्य-वस्तु रख कर उनके समीप जलाशय के ऊपर रखने का अवसर न भी हो और धनुर्धर मछली भूख से आकुल हो तो जल-जंतुशालाध्यक्ष के जलाशय के समीप से होकर जाने पर धनुर्धर मछली अपनी फुहार फेकने की कला दिखा कर अपनी भूख की सूचना देती है। उसे सम्मुख खाद्य द्रव्य न दिखाई पड़ने पर भी उपयुक्त व्यक्ति पाकर उसके ऊपर ही पानी की फुहार छोड़ने का उपहास सूझता है। जंतुओं की बुद्धि का यह एक उदाहरण है जो उदरपूर्ति की चिन्ता व्यक्त करता है।

जल-जंतुओं में एक क्षेत्र में ही अनेक जंतुओं का संघट्ट होने से लुका-छिपी या एकाकी पड़ने के स्थल का अभाव हो सकता है। इसलिए उनमें से बहुतेरे दूसरे को आहार बनाने का सहज प्रयत्न करते हैं। मछलियों के संसार में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि छोटी मछली किसी दूसरी बड़ी मछली का आहार बनती है। वह आक्रा-मक मछली भी बदले में फिर अपने से बड़े मत्स्य के उदर में पहुँच जाती है। इसी तरह क्रम चला करता है। कहीं पर भी दुर्बलों, निर्बलों तथा छोटों का ठिकाना नहीं। बली ही सब जगह अपने बल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रधानता दिखाता है। एक बली को भी दूसरा अपेक्षाकृत अधिक बली पछाड़ दिखाता है। इस संसार-कृत्य को मत्स्य-न्याय नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। किन्तु हमारे विस्मय की बातों में एक अद्भुत बात इस मत्स्य-न्याय में समुद्र के मत्स्य-संसार में दिखाई पड़ती है। यह देखा गया है कि केवल आकार बड़ा होने से ही कोई मछली प्रबल शक्ति वाली नहीं हो सकती तथा छोटा ही आकार होने के कारण किसी मछली को निश्चित रूप से निर्बल कहना भ्रमपूर्ण हो सकता है। कुछ छोटे आकार की ही ऐसी मछलियाँ होती हैं जो आकार में कई गुना बड़ी मछलियों को भी पछाड़ सकती हैं। ऐसी अवस्था में शक्ति के बल पर छोटी मछली ही बड़ी मछली को उदरस्थ कर डालने का उद्योग कर सकेगी।

बरमुडा द्वीप में श्याम भक्षक मत्स्य (ब्लैक स्वालोअर) छोटे आकार का ही होता है। परन्तु अपने से तिगुनी बड़ी मछली को निगल कर अपने पेट में पहुँचा लेता है। श्याम भक्षक मछली का पेट इतना बड़ा तो होता नहीं जिससे उसमें बड़ी मछली सहज अँट जाय, परन्तु उसमें एक विशेषता होती है। रबर के थैले की भाँति उसका पेट भीतर ही भीतर फैल सकता है। बस इस प्रसरणशील उदर में वह भारी मछली को भी निगल कर भारी कुप्पे-सा पेट बनाये दिखाई पड़ सकती है। उसके अन्दर बड़ी मछली सिमट कर अँट जाती है और कुछ समय में पच कर लुप्त हो जाती है।

समुद्र में एक जंतु तारक मत्स्य नाम का होता है। यह वन-मूषक वंश का जंतु कहा जा सकता है। इसका विचित्र आकार-प्रकार होता है। एक केन्द्र से पाँच भुजाएँ निकल कर पंचभुजी आकार बनाती हैं, परन्तु ये भुजाएँ साधारण वस्तु नहीं हैं। उन्हें काल दण्ड ही कहा जाना उचित हो सकता है। उनमें नीचे के तल पर बहुसंख्यक क्षुद्र आकार के पैर होते हैं। ये क्षुद्र पाद बड़े संवेदन-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शील होते हैं तथा उनमें चूषक प्यालियाँ लगी होती हैं। इन क्षुद्र पादों का अधोतल कोमल रबर की गद्दी समान मान लें जिनको केन्द्रित भाग से भीतर की ओर सिकोड़ सकने की शक्ति उसकी पेशियों में हो तो उनके इस सिकुड़न से बने रिक्त स्थल में वायुशून्य (वैकुअम) स्थल बन जायगा। यह वायुशून्य स्थल उन क्षुद्र पादों को किसी स्थल पर चिपका रखने में समर्थ होगा। इस चूषक प्याली की व्यवस्था से तारक मत्स्य अपनी भुजाओं के क्षुद्र पादों को किसी भी जीव के अंग या पदार्थ से चिपका कर अपनी इच्छा के बिना पृथक् नहीं होने दे सकता। इस भारी जकड़न या ग्राह्य शक्ति को तारक मत्स्य अपने प्रबल आखेट पर भी अधिकार पाने में प्रयुक्त कर सकता है। अपनी चूषक प्यालियों वाले क्षुद्र पादों को किसी जंतु के अंग पर बैठाते ही वह उसे अपने वंश में पा जाता है। फिर अपने उदर को मुख के द्वार से बाहर निकाल कर उस जंतु को उसके अन्दर लपेट लेता है। फिर धीरे-धीरे उसका रक्त चूस कर वह आहार पाता है तथा जीव मृत हो जाता है।

आहार के लिए संघर्ष में तारक मत्स्य की कोई भुजा कभी भंग हो जाती है, परन्तु उसके स्थान पर नई भुजा उत्पन्न हो जाना अधिक समय की बात नहीं होती। इतना ही नहीं, तारक मत्स्य को बीच से चीर कर टुकड़े कर फेंक दीजिये तो उन पृथक् हुई भुजाओं को स्वयं ही पंचभुजी तारक मछली बन कर तैयार हो जाने में कोई बाधा नहीं होती। इस तरह एक तारक मछली के अंगों से ही तारक मछली के अनेक रंग-रूप निर्मित होकर दानवों की काल्पनिक वृद्धि कथा से होड़ लेते दिखाई पड़ते हैं।

पतली छड़ी के आकार का एक नन्हा कीट केवल डेढ़ इंच लंबा होता है। टाँगें और भी पतली होती हैं। पीलापन लिये रंग का आकार बन्द स्थान के जलखंडों में पाया जाता है। वहाँ जलमग्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रधानता दिखाता है। एक बली को भी दूसरा अपेक्षाकृत अधिक बली पछाड़ दिखाता है। इस संसार-कृत्य को मत्स्य-न्याय नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। किन्तु हमारे विस्मय की बातों में एक अद्भुत बात इस मत्स्य-न्याय में समुद्र के मत्स्य-संसार में दिखाई पड़ती है। यह देखा गया है कि केवल आकार बड़ा होने से ही कोई मछली प्रबल शक्ति वाली नहीं हो सकती तथा छोटा ही आकार होने के कारण किसी मछली को निश्चित रूप से निर्बल कहना भ्रमपूर्ण हो सकता है। कुछ छोटे आकार की ही ऐसी मछलियाँ होती हैं जो आकार में कई गुना बड़ी मछलियों को भी पछाड़ सकती हैं। ऐसी अवस्था में शक्ति के बल पर छोटी मछली ही बड़ी मछली को उदरस्थ कर डालने का उद्योग कर सकेगी।

बरमुडा द्वीप में श्याम भक्षक मत्स्य (ब्लैक स्वालोअर) छोटे आकार का ही होता है। परन्तु अपने से तिगुनी बड़ी मछली को निगल कर अपने पेट में पहुँचा लेता है। श्याम भक्षक मछली का पेट इतना बड़ा तो होता नहीं जिससे उसमें बड़ी मछली सहज अँट जाय, परन्तु उसमें एक विशेषता होती है। रबर के थैले की भाँति उसका पेट भीतर ही भीतर फैल सकता है। बस इस प्रसरणशील उदर में वह भारी मछली को भी निगल कर भारी कुप्पे-सा पेट बनाये दिखाई पड़ सकती है। उसके अन्दर बड़ी मछली सिमट कर अँट जाती है और कुछ समय में पच कर लुप्त हो जाती है।

समुद्र में एक जंतु तारक मत्स्य नाम का होता है। यह वन-मूषक वंश का जंतु कहा जा सकता है। इसका विचित्र आकार-प्रकार होता है। एक केन्द्र से पाँच भुजाएँ निकल कर पंचभुजी आकार बनाती हैं, परन्तु ये भुजाएँ साधारण वस्तु नहीं हैं। उन्हें काल दण्ड ही कहा जाना उचित हो सकता है। उनमें नीचे के तल पर बहुसंख्यक क्षुद्र आकार के पैर होते हैं। ये क्षुद्र पाद बड़े संवेदन-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शील होते हैं तथा उनमें चूषक प्यालियाँ लगी होती हैं। इन क्षुद्र पादों का अधोतल कोमल रबर की गद्दी समान मान लें जिनको केन्द्रित भाग से भीतर की ओर सिकोड़ सकने की शक्ति उसकी पेशियों में हो तो उनके इस सिकुड़न से बने रिक्त स्थल में वायुशून्य (वैकुअम) स्थल बन जायगा। यह वायुशून्य स्थल उन क्षुद्र पादों को किसी स्थल पर चिपका रखने में समर्थ होगा। इस चूषक प्याली की व्यवस्था से तारक मत्स्य अपनी भुजाओं के क्षुद्र पादों को किसी भी जीव के अंग या पदार्थ से चिपका कर अपनी इच्छा के बिना पृथक् नहीं होने दे सकता। इस भारी जकड़न या ग्राह्य शक्ति को तारक मत्स्य अपने प्रबल आखेट पर भी अधिकार पाने में प्रयुक्त कर सकता है। अपनी चूषक प्यालियों वाले क्षुद्र पादों को किसी जंतु के अंग पर बैठाते ही वह उसे अपने वंश में पा जाता है। फिर अपने उदर को मुख के द्वार से बाहर निकाल कर उस जंतु को उसके अन्दर लपेट लेता है। फिर धीरे-धीरे उसका रक्त चूस कर वह आहार पाता है तथा जीव मृत हो जाता है।

आहार के लिए संघर्ष में तारक मत्स्य की कोई भुजा कभी भंग हो जाती है, परन्तु उसके स्थान पर नई भुजा उत्पन्न हो जाना अधिक समय की बात नहीं होती। इतना ही नहीं, तारक मत्स्य को बीच से चीर कर टुकड़े कर फेंक दीजिये तो उन पृथक् हुई भुजाओं को स्वयं ही पंचभुजी तारक मछली बन कर तैयार हो जाने में कोई बाधा नहीं होती। इस तरह एक तारक मछली के अंगों से ही तारक मछली के अनेक रंग-रूप निर्मित होकर दानवों की काल्पनिक वृद्धि कथा से होड़ लेते दिखाई पड़ते हैं।

पतली छड़ी के आकार का एक नन्हा कीट केवल डेढ़ इंच लंबा होता है। टाँगें और भी पतली होती हैं। पीलापन लिये रंग का आकार बन्द स्थान के जलखंडों में पाया जाता है। वहाँ जलमग्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनस्पतियों के अनुरूप ही रंग होने से उनके ही मध्य छिपा पड़ा रहता है। अनेक जल-जंतुओं की भाँति इसे ऊपरी तल पर श्वास लेने के लिए जब-तब आना पड़ता है। यह क्षीणकाय लम्बोतरा कीट जल-दंड कीट या जल सीकिया कहा जा सकता है। इसे रक्त-पिपासु वृत्ति रखते पाया जाता है। अतएव छोटी-मोटी मछलियों को धर दबोचने के लिए इन भुजदंडों में पर्याप्त बल होता है। एक बार इन पतली भुजाओं के चंगुल में फँस जाने वाली मछली फिर छूट कर भाग नहीं सकती। अतएव वह उसको सदेह ही छोड़ कर केवल रक्तपान कर जीवहीन कर देता है। तालाबों का यह मत्स्य भक्षक क्षुद्र कीट उदरपूर्ति का विकट प्रयास करता दिखाई पड़ता है।

जंतुओं की विचित्रताओं का वर्णन करते हुए जब हम मंडूक का नाम ले बैठें तो कदाचित एक उपहास की दृष्टि डाल कर ही उसकी बात छोड़ देने की इच्छा हो, परंतु अद्भुत जंतुओं की कथा में मेढक भी सात सवारों में अपना नाम लिखाने में पीछे नहीं दिखाई पड़ता। आश्चर्य की बात यह है कि जो मेढक सर्प को वंश-परम्परा से अपना घोर शत्रु मानता चला आ रहा हो, उसी के वंश में एक जाति के मेढक को इस दुर्दमनीय शत्रु का ही आहार करने का दृश्य उपस्थित करते देखा जाता है। यह मंडूक इस क्रिया में हमें गरुड़ या नेवले से होड़ लेता दिखाई पड़ता है। यह अहिभोजी या सर्पभक्षक मंडूक किसी मनगढ़ंत कहानी की बात नहीं है, प्रत्युत एक वैज्ञानिक की खोज में सर्प के आहार का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित करते पाया जा सका है।

धूम्रीय वन मंडूक का वैज्ञानिक नाम लेप्टोडेक्टिलस पेंटा-डोक्टिलस है। यह दक्षिण अमेरिका के घने जंगलों में पाया जाता है। अपने आकार के अनुसार यह एक अत्यधिक पेटू जंतु कहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा सकता है। उष्ण प्रदेशों की खोहों के जलाशयों में यह आखेट की चिन्ता में बैठा पाया जा सकता है। चौड़ा मस्तक, बड़ी उभड़ी आँखें तथा पुष्ट तथा भारी भरकम शरीर रखने वाला मंडूक लगभग आधा सेर तोल में होता है। यह अपने बराबर आकार के जन्तु पर भी आक्रमण करने में शंकित नहीं हो सकता। उसकी मांसल जिह्वा चमगीदड़ों, चूहों तथा साँपों को पछाड़ देने में समर्थ होती है। केनेथ डबल्यू विन्टन नाम के एक वैज्ञानिक ने पनामा नहर

धूम्रीय वन मंडूक साँप को खा जाता है।

के क्षेत्र में एक जंगल मंडूक को दो वर्षों तक बन्दी रखकर उसके गुण स्वभाव का अध्ययन करने का प्रयोग किया था। उस वैज्ञानिक के वर्णनों से ज्ञात होता है कि यह मंडूक कितना भुक्खड़ होता है। एक्स किरण चित्रों से प्रदर्शित करते हुए इस वैज्ञानिक ने इस मंडूक द्वारा एक हरित वृक्ष जीवी सर्प के निगले जाने का दृश्य चित्रित करने का प्रयत्न किया है। यह सर्प साढ़े चार फीट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लंबा था। जङ्गल मंडूक ने अपनी जिह्वा को सर्प के मुख पर फेंक कर उसके मुख को अपने मुँह में डाल लिया। दो दिन तक वह इस सर्प को समूचा निगल जाने के कृत्य में संलग्न रहा। कुछ अंश निगलकर वह अपनी पाचन प्रणाली से भीतर पहुँचे सर्प के अंग को पचा लेने देता। फिर कुछ स्थान रिक्त होने पर कुछ और अंश भीतर करता। इस तरह वह सर्प का पूर्ण अंग निगल कर पचा गया। सर्प अपनी शक्ति लगाने से कुछ भी उठा न रखता था। वह अपनी धड़ से कुंडली बनाकर बारबार मेंढक को लपेट कर परास्त करने का प्रयत्न करता परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाते। अन्ततः सर्प भी जीव ही था। श्वास लिये बिना वह कब तक जीवित रह सकता था। मेंढक के मुँह के अंदर अपना मुँह जकड़े रूप में बंद रहने से अंत में मृत्यु अवश्यंभावी थी। अतएव सर्प की जीवित लीला समाप्त हो गई। मेंढक विजयी हुआ।

मंडूकों की दो सहस्र जातियाँ पृथ्वी पर पाई जाती हैं। उनके जीवन यापन के साधन तथा आकार-प्रकार विभिन्न होते हैं। कोई पानी में जीवन व्यतीत कर जाता है। कोई शुष्क भूमि पर काल-यापन करता है। कोई वृक्षारोही भी बन जाता है। कुछ बिवर-वासी होते हैं। कुछ को हम दीर्घाकार पाते हैं तो कुछ क्षुद्राकार होते हैं। कुछ के शरीर पर रोम राजि विराजमान होती है तो कुछ के सिर पर शृंग का विचित्र दृश्य देखा जाता है। इन सब वर्णनों से मंडूक पुराण की सृष्टि करना संभव हो सकता है। किन्तु हम इतना ही कह कर संतोष करेंगे कि जीवन की विविध अवस्थाओं में संघर्ष कर वंश-रक्षा कर सकने के उद्योग में इनमें अन्य जन्तुओं की तरह विविधरूपता पाई जाती है। आदि सृष्टि के जन्तुओं में प्राचीनतम उल्लेखनीय जन्तु मंडूक का नाम हमें मिलता है। अतएव पृथ्वी के दीर्घकालीन इतिहास में मंडूक की जातियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को कितने युगों-कल्पों को पार कर आज के युग तक वंश को पहुँचाने के उद्योग में इतनी जातियाँ होना विशेष आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती।

मंडूकों की जीवन कथा देखकर ज्ञात होता है कि वे सभी अपना शिकार पाने के लिए अपनी पुष्ट तथा चिपकन जिह्वा को बाहर निकाल कर प्रहार करते हैं। इनकी जिह्वा विचित्र रूप की बनी होती है। अन्य जन्तुओं में साधारणतया जिह्वा का मूल गले में अवस्थित होता है तथा अग्र भाग मुँह के द्वार तक निकला होता है परन्तु मंडूक की जिह्वा-रचना विपरीत प्रकार की होती है। उसका मूल भाग निचले ओठ के अंतर्भाग में अवस्थित होता है तथा दूसरा खुला सिरा पीछे लौटकर गले की ओर तक मुड़ा होता है। आखेट पर प्रहार करने के लिए उसे बाहर कर वह शिकार को उससे ही बरबस भीतर खींच लेता है।

सर्प की जिह्वा मेंढक की तरह नहीं होती। वह अपनी दोफंकी जीभ से विष भी नहीं छोड़ता। विष तो उसकी ऊपरी दाढ़ से संलग्न दो नोकीले, खोखले दाँतों से ही निकलता है। ये विषदंत अपने मूल में विष की थैलियाँ रखते हैं जो दाँत के गड़ाने पर दबाव के कारण खुलकर विष दाँतों में उतर आने देती हैं। सर्प अपनी जीभ को स्पर्श करने, सूंघने तथा भोजन करने में प्रयोग करता है। सर्प के फनों का अधिक वर्णन देने की कोई आवश्यकता नहीं। वह उसकी गर्दन के पार्श्ववर्ती चमड़े के चपटे बने भाग होते हैं जिन्हें सप बराबर बनाये नहीं रह सकता। विश्राम करने पर वह गोलाकार गर्दन ही कर लेता है।

साँप अपना मुँह दो लम्बी पृथक्-पृथक् अस्थिओं द्वारा निर्मित जबड़ों के कारण मनमाने ढंग से फैला सकता है। ऊपर तथा निचले जबड़े की ये दोनों हड्डियाँ पीछे की ओर एक ऐसी बंधनी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बँधी होती हैं जो सिकुड़ या फैल सकती है। इसलिए साँप मुँह फैला या सिकोड़ सकता है। इस गुण के कारण वह भारी आकार के जन्तु को भी मुँह फैला कर निगल जाता है। साँप के वंश में अपनी जाति के ही दूसरे छोटे आकार के सर्प को निगल कर हड़प जाना न्यायसंगत ज्ञात होता है। मत्स्यन्याय तो कम से कम इसका समर्थन करता ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोंसले की रचना

हम मनुष्य हैं। हमारी विविध आवश्यकताएँ हैं। हमें शारीरिक भोजन अपेक्षित है। मानसिक भोजन भी उतना ही आवश्यक है। मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन के साधन भी कम आवश्यक नहीं। सुख सामग्री की अनेक वस्तुएँ चाहिए। नाना विद्याओं और कलाओं, राग रंग, ऐश्वर्य आदि सबके उपलब्ध करने के साधन भी उपेक्षणीय नहीं। हाँ, जो पशु स्तर के मनुष्य हैं, उनकी आवश्यकताएँ न्यूनतम रूप की हो सकती हैं। किन्तु उनमें भी भोजन तथा वस्त्र और आवास की आवश्यकता होती ही है। फिर जो साक्षात् पशु ही हैं उनकी भी आवश्यकताएँ इससे अधिक नहीं हो सकतीं। हम पशु-पक्षी जगत में वस्त्र की समस्या सुलझाने का भार तो प्रकृति द्वारा ही अपने ऊपर लिए देखते हैं। जन्म के साथ ही दृढ़ चमड़े तथा रोमों का आवरण भी पशु-जगत में उदारतापूर्वक वितरित दिखाई पड़ता है, परन्तु भोजन तथा आवास के लिए जंतु जगत को अपने उद्यम, कौशल तथा बल पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

भोजन की समस्या जितनी जटिल है, उससे कुछ ही कम जटिल समस्या आवास की होती है। हम यह कह सकते हैं कि पशुओं को महल बनाने की क्या आवश्यकता पड़ सकती है। वे तो जंगलों, मैदानों, समुद्रों, तालाबों आदि में दिन काट ही लेते हैं परन्तु ऋतुओं की विषमता का प्रहार अनेक दशाओं में जंतुओं के लिए रक्षा का साधन ढूँढ़ने की भले ही आवश्यकता न खड़ी करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो, परन्तु अंडे-बच्चों की समस्या तो सुलझाने से छुटकारा नहीं हो सकता। वे तो भावी संतान-वृद्धि तथा वंशरक्षा के अनुपेक्षणीय साधन हैं। दूसरे, अत्यन्त शैशव या उत्पन्न होने के पूर्व अंडे रूप में भी उनकी रक्षा अनेक शत्रुओं तथा ऋतुओं की मार से करने के लिए कोई रक्षित स्थान आवश्यक है। यही साधन हमें उनके अनेक रूप रंग के घोंसलों में प्राप्त होता है।

विविध प्रकार के घोंसलों की रचना में जंतुओं के कितने प्रकार के कौशल देखने को मिल सकते हैं। इस प्रश्न का उत्तर हमें कुछ जीव-जंतुओं के निर्मित विविध घोंसलों के साधारण वर्णन से ही मिल सकता है। मकड़े की हम अनेक जातियाँ पाते हैं। वे उन्मुक्त पवन में श्वास लेने वाले जीव हैं। किन्तु उनमें कुछ जातियाँ ऐसी भी विकसित हो सकी हैं जो पानी में ही काल-यापन कर सकें। इनको जल-मकड़ा नाम दिया जाता है। यह तालाबों में पाया जाता है तथा पेटे में वनस्पतियों के जलगर्भी भाग के अवलम्ब से अपना घोंसला बनाता है। पानी के अन्दर बने इन जल-मकड़ों के घोंसले की रूप-रेखा अद्भुत होती है। हम इसको औंधी रक्खी कुप्पी या चौड़ी नली का रूप कह सकते हैं। इसका मुँह नीचे की ओर होता है। अपने लचीले जाले के तार से वह इस औंधी कुप्पीनुमा घोंसले को रच कर तैयार करता है। यह घोंसला पौधों से बँधा होता है जो पानी में उत्पन्न होते हैं।

जल-मकड़े के पानी के अंदर घोंसला बनने के आकार को तो हमने देखा परन्तु यह रचना उतनी अद्भुत नहीं है जितना उसके अन्दर मकड़े की क्रियाशीलता तथा कौशल का नमूना उपस्थित मिलता है। जल-मकड़े को यदि उस घोंसले में ही रहना है तो उसे किसी प्रकार घोंसले के ही अन्दर श्वास लेने के लिए हवा विद्यमान होनी चाहिये। वह स्वभाव से ही जल का जंतु नहीं होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी इस विवशता के जीवन में पानी के अंदर ही खुली हवा पा सकने के लिए एक और उपाय करते देखा जाता है। वह पानी के तल पर जाकर अपने रोममय शरीर को वायु के सम्पर्क में लाता है तथा अपने शरीर के निकट वायु को बुलबुले रूप में एकत्र कर लेता है। इस बुलबुले को वह अपने पेट के नीचे पैरों से लटकाये हुए नीचे जाता है। यह बड़े आकार का बुलबुला घोंसले के पास ले जाया जाकर उसके अन्दर छोड़ दिया जाता है। उसकी हवा घोंसले के अन्दर ऊपरी छोर की ओर चली जाती है।

जल-मकड़ा बार-बार ऐसे बुलबुले ऊपरी तल से बना कर नीचे घोंसले के मुँह में छोड़ता रहता है। इससे धीरे-धीरे पूरी तरह से वह हवा से भर जाती है। अब वहाँ जल-मकड़ा बड़े आनन्द से स्वयं जल विहार कर सकता है। साथ ही संतान की सुविधा के लिए स्थान निकल आता है।

पानी के गर्भ में अपने जाल के तारों से वायु तथा जल दोनों से ही अभेद्य दीवालों वाली औंधी कुप्पी या घंटीनुमा घोंसला बनने पर कौशल से बुलबुले ला-लाकर वायु से पूर्ण कर देता है तो मकड़ा अपने दिन भर पड़े रहने के लिए आवास पा जाता है तथा अंडे बच्चों की उत्पत्ति का भी उपक्रम करने लगता है। प्रेमालाप तथा गर्भाधान के पश्चात् अंडे देने और सेने की बारी आती है। यह सब कुछ घंटाकृति घोंसले में जल के पेटे में होता है। इस घोंसले के ही ऊपरी पार्श्व में पृथक कक्ष में शिशु जल-मकड़े का लालन-पालन होता है। वह जल में श्वास लेने के साधन गलफड़े के बिना ही उस घोंसले के कक्ष में करता रहता है।

जल-मकड़ा अपना अधिकांश समय घोंसले में ही व्यतीत करता है। दिन को तो वह विश्राम ही करता रहता है। रात को उसका आखेट का समय होता है। उस समय वह सब प्रकार के जलकीटों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में से किसी को अपना आहार चुन सकता है। उसके जीवन के लिए रोमावली मंडित परिधान अत्यावश्यक वस्तु होता है। उसी की सहायता से बुलबुलों में वायु की पोटली बन्दी कर अपने जलगर्भी घोंसले तक पहुँचा सकने में समर्थ होता है। यदि रोमयुक्त परिधान न हो तो बुलबुला बना सकना कठिन हो। अतएव उसका जलजीवन भी अत्यन्त कठिन हो जाय। जिस जल-मकड़े के परिधान क्षत-विक्षत हो जाते हैं तथा शैवाल, काई आदि के सम्पर्क से चिपकन शील हो जाते हैं, उसका जीवन अत्यन्त दूभर हो जाता है। वायु संचय कर घंटाकार गृह में ले जाने की क्रिया शिथिल हो जाती है। यह जल-मकड़े का हस्त कौशल से ही भद्दा-सा बना घंटाकृति घोंसला एक शिल्पकला का अद्भुत उदाहरण है जो जन्तुओं को बुद्धि की परख में निम्न स्तर पर रखने के लिए मानवों को चुनौती देता है।

क्षुद्र बुन्दकित श्वानमत्स्य जल-मकड़े की भाँति तो घोंसला नहीं बनाता। परन्तु अपने अंडों के लिए शृंगीनुमा आश्रय-स्थल अवश्य निर्मित करता है। यह मत्स्य अनस्थिक (शार्क) मत्स्य के वंश का कहा जा सकता है। यह अनेक स्थानों के समुद्र में पाया जाता है। इसका मोटा चमड़ा शैग्रीन कहलाता है तथा कमाये जाने पर पालिश करने के काम आता है। क्षुद्र बुन्दकित श्वान मत्स्य का अंड-परित्राण कोष्ठ सींग के पदार्थ से निर्मित विचित्र आयताकार पेटी होता है। यह पीतवर्ण का होता है जो समुद्रतटीय बालुका-राशि में खोखले रूप में पड़ा पाया जा सकता है। इन अंडपेटियों के छोरों पर विचित्र मरोड़युक्त लम्बी प्रतानवत बन्धनी लगी होती हैं जो उसे समुद्री शैवाल की शाखों या चट्टानों से आबद्ध रखती हैं। ये अंड पेटिकाएँ पारदर्शक होती हैं। अतएव जब-तब नव शिशु को उसके अन्दर झलकता देखा जा सकता है। वह अंडे के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्दर की सफेदी से बँधा होता है जिसे खाकर वह बढ़ कर शिशु बनता है। अंडा फूटने पर उसका शरीर बाहर आकर पलता है।

पक्षियों के घोंसले विविध रूप के होते हैं। हम उनको कहीं किसी वृक्षकोटर, शाखा, झाड़ी में बना देखते हैं, कहीं छतों के आड़ या भातरी कोनों या दालान के ऊपरी अन्तरालों में ही उनकी रचना पाई जाती है। कहीं वृक्ष के तने खोद कर उनकी बिल बनती है। ऊँचे भीटों या साधारण निर्जन भूमि या नदी तालाब के किनारों पर भी उनके विवर बने दिखाई पड़ते हैं। किंतु इन सब में विचित्र क्षुद्र उल्लूक का घोंसला कहा जा सकता है। यह संसार का क्षुद्रतम उलूक कहा जा सकता है। इसे एल्फ उल्लूक (माइक्रो पैल्लस ह्विटनेयी) नाम दिया जाता है। किंतु यह अपने प्रयास से घोंसला स्वयं निर्मित करने का कष्ट नहीं उठाता, बल्कि किसी पुराने छिद्र पर ही अपना अधिकार जमा लेता है। नागफनी के काँटे में कठफोड़वा पक्षी अपने चंचु से खोद-खोद कर छेद किये होता है। नागफनी का रस स्रवित होकर जम जाने से भीतरी परत दृढ़ चादर से मढ़ी-सी होती है। उसी में घुस कर एल्फ उलूक उसे अपना घोंसला घोषित करता है।

काँटों से आच्छादित नागफनी की डालों में एक छिद्र से झाँकता हुआ नन्हा उलूक कितना विचित्र जान पड़ सकता है। इस उलूक का आकार गौरैया से बड़ा नहीं होता। अपनी वंश परम्परा से क्षुद्र उलूक भी रात्रिजीवी ही होता है। यह कीड़े-मकोड़ों, चींटों, गुबरैलों, टिड्डों या कभी-कभी चूहे को अपना आहार बनाता है। आकार तो छोटा होता है। परन्तु इसके उड़ने का हहास अपेक्षाकृत बहुत कर्कश होता है। यह अपने दीर्घाकार उलूक बन्धुओं से इस बात में भिन्नता रखता है। बड़े उलूक की उड़ान की तो आहट भी नहीं मिल पाती, परन्तु क्षुद्र उलूक वायु संघर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से ध्वनि उत्पन्न करते हुए रात भर उड़ान किया करता है। यह बड़ा कपटी भी होता है। यदि कभी पकड़ में आ गया तो छुटकारे की विचित्र युक्ति कर लेता है। यह मूर्च्छावस्था प्रकट कर बिल्कुल मृत-सा जान पड़ने लगता है, परन्तु इस पर से ध्यान हटने या पकड़ शिथिल होते ही यह भाग निकलने का अवसर ढूँढ़ लेता है।

बंगाल के गहन वनों का वासी महावाध्रीणस, या धनेश श्याम श्वेत रंजित शरीर का पक्षी है जिसकी चोंच विशाल नतोदर (मेहराबनुमा) आकृति की पीतवर्णीय होती है तथा उसके शीर्ष पर सिरस्त्राण सज्जित होता है। बसन्त के आगमन पर मादा धनेश कोई वृक्ष कोटर पा जाती है। उसके अन्दर आसन जमा कर वह उसके द्वार को मिट्टी तथा गोबर से पाटने का उद्योग करती है। उसकी चोंच मिट्टी की तह सँवारने की करनी का काम करती है। अन्त में केवल एक छोटा छेद रह जाता है जिसमें से बाहर की ओर उसकी केवल चोंच कठिनाई से निकल सकती है। यह अपने नवप्रजननीय शिशु की आक्रामकों से रक्षा करने की अचूक विधि कही जा सकती है। यह रक्षा-प्रबन्ध केवल मादा धनेश की रचना होती है। वह भीतर से ही यह सब रचना कर लेती है। नर धनेश के भीतर प्रविष्ट करने का कोई उदाहरण नहीं पाया जाता। हाँ, कभी-कभी बाहर से सामग्री पहुँचा देने की बात अवश्य देखी जाती है।

मादा धनेश की रचना विशेष कर सर्पों या अन्य शत्रुओं से अपने अंडे या बच्चे रखने की चिंता का परिणाम होती है। जब तक अंडे से शिशु की उत्पत्ति होने के पश्चात उसकी अवस्था ऐसी न हो जाय कि वह स्वयं अपने पराक्रम से संसार-यात्रा किंवा जीवन संघर्ष में कूद पड़ने में समर्थ न हो तब तक वह अपने घोंसले का द्वार बन्द रख कर अपने को भी स्वेच्छा से बन्दी बनाये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखती है। यह अपने शिशु के प्रति अगाध स्नेह तथा वंश रक्षा की अन्तर्गामी प्रेरणा ही होती है जो उसे इस कारावास जीवन तथा यातना के लिए सन्नद्ध करती है। किंतु इस वन्दी जीवन में उसके जीविकोपार्जन की अक्षमता होने पर नर धनेश की उसे सहायता मिलती रहती है। वह बाहरी जगत का चक्कर मार कर शिकार, कीड़े मकोड़े, क्षुद्र सरीसृप, जंगली फल फूल या अन्य भोज्य पदार्थ पहुँचाता ही रहता है। इसी अवधि में मादा धनेश अपने पर गिरा कर नये पर उगा लेने की क्रिया कर लेती है। अधिक समय तक वन्द रहने के कारण शरीर की स्वच्छता का यह उत्तम प्रबन्ध ही कहा जा सकता है।

धनेश बलशाली, उड़ाके तथा अति क्रियाशील पक्षी होते हैं किंतु उनकी उड़ान मन्द गति की ही होती है। घनी डालियों, टहनियों आदि के मध्य भी वे अपने विशाल चंचुयुक्त शरीर को उड़ान में पार कर लेने में कुशलता दिखलाते हैं। चंचु की शृङ्गतन्तु-निर्मित ऊपरी परत हटाने पर हम धनेश के शव में आंतरिक चंचु की रचना का दृश्य देख सकते हैं। यह आंतरिक चंचु किसी ठोस अस्थि खंड द्वारा निर्मित नहीं होता बल्कि उसकी रचना बहुसंख्यक कोषों या कोष्ठों द्वारा होती है जो सूक्ष्मतम अस्थि-पत्तरों से पृथक किये गये होते हैं। अतएव सम्पूर्ण चंचु अत्यधिक हल्का होता है। एक फुट लम्बा चंचु केवल कुछ छटाँक तोल का ही हो सकता है। धनेश को ग्रेट हार्नबिल या डिचोसेरोज बाइकोर्निस वैज्ञानिक नाम दिया गया है।

कुछ पशु-पक्षी जहाँ अपने शिशु की उत्पत्ति तथा पालन के लिए विशेष आतुर देखे जाते हैं वहाँ हमें कुछ ऐसे निश्चिन्त जीव भी दिखाई पड़ते हैं जो कहीं पर अंडा देकर फिर निर्द्वन्द्व हो जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। उन्हें अंडा सेने के लिए ऊपर से बैठे रहने या रक्षा करने की तनिक भी चिन्ता नहीं होती। ऐसे जीवों में आस्ट्रेलिया के मेगापोडस नाम के पक्षी का नाम लिया जा सकता है। इसे दीर्घचरण पक्षी भी कहा जा सकता है। इस जाति के कुछ पक्षी तो गरम बालू में ही अंडे दे देते हैं और कुछ गर्म सोतों के पास की भूमि पसन्द कर अंडे देते हैं किन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो अपनी युक्ति से घास-पात का ढूहा बना कर अंडे देते हैं। उसकी प्राकृतिक सड़ान-गलान क्रिया से जो उष्णता उत्पन्न होती है वह अंडे से बच्चे के उत्पन्न कराने में सहायक होती है। इस वानस्पतिक कूड़ा-कबाड़ के ढूहे को कई नर पक्षियों का झुण्ड सामूहिक प्रयत्न से संचय करता है। वे इन कूड़ा-कबाड़, मिट्टी तथा सड़ती-गलती पत्तियों को पैरों से ठेल-ठेल कर एकत्र करते हैं। इस सामूहिक प्रयत्न से निर्मित ढूहे में सामूहिक रूप से अंडे देते हैं। वहाँ सुविधापूर्वक अंडे सेये जाते हैं। फिर दूसरे-तीसरे वर्ष भी उसी स्थल पर ढूहा बनाने का प्रयत्न करने से ऊँचा टीला-सा रूप कुछ दिनों में बना पाया जा सकता है। सौ फीट परिधि में फैला छः फीट ऊँचाई का ढूहा कई वर्षों तक घोंसला बनाते रहने के प्रयत्नों से बना देखा जा सकता है। एक स्थान पर बना ढूहा तो तौल में डेढ़ सौ मन एक मौसम में ही पाया गया था। ऐसे ढूहों के बीच रखे अण्डे समय आने पर नव-शिशुओं को जन्म देते हैं। उस ढूहे के ऊपरी भाग में से इन शिशुओं को अपने प्रयत्न से ही मार्ग बना कर निकलते पाया जाता है। वे उस समय पर से ढके हुए शरीर रखे निकलते मिलते हैं। इतना ही नहीं, वे ढूहे से बाहर निकलने के घंटों बाद ही उड़ कर भागने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं। इतनी शक्ति का बच्चा अन्य जन्तुओं के अंडों से उत्पन्न नहीं दिखाई पड़ता जो शीघ्र उड़ने लगता हो। इनके उत्पन्न करने के लिए माता-पिता को सेने में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

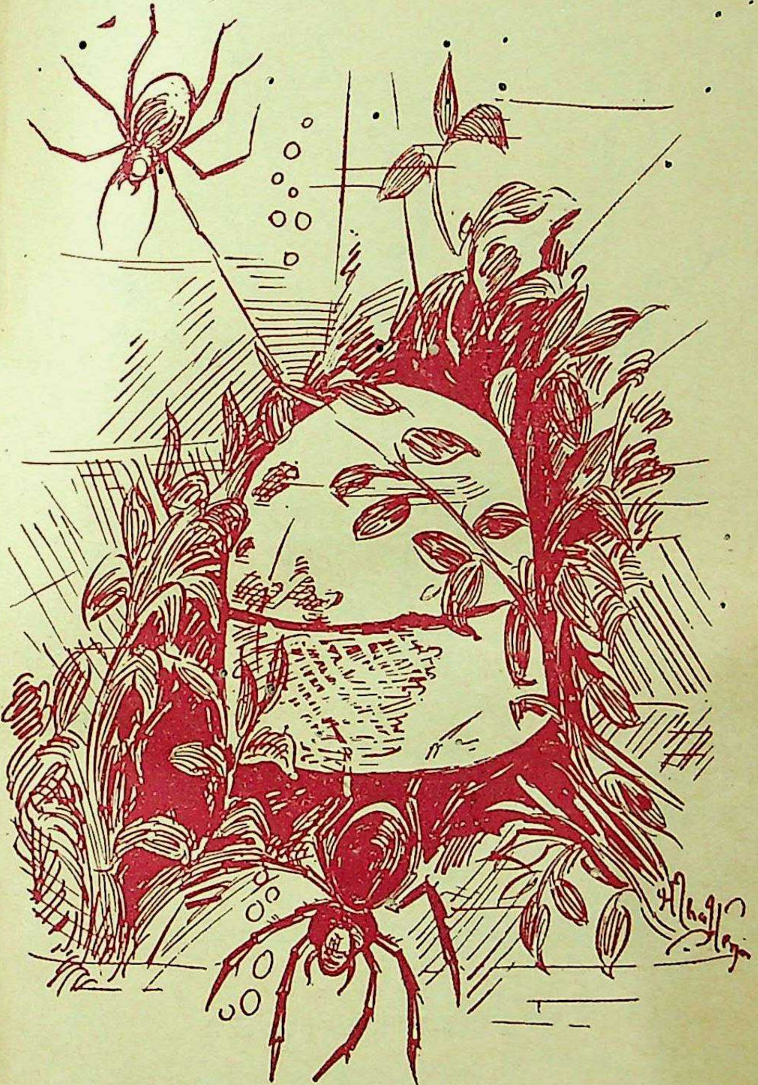

जल मकड़े का पानी के ऊपर घंटीनुमा घोंसला (पृष्ठ ७६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

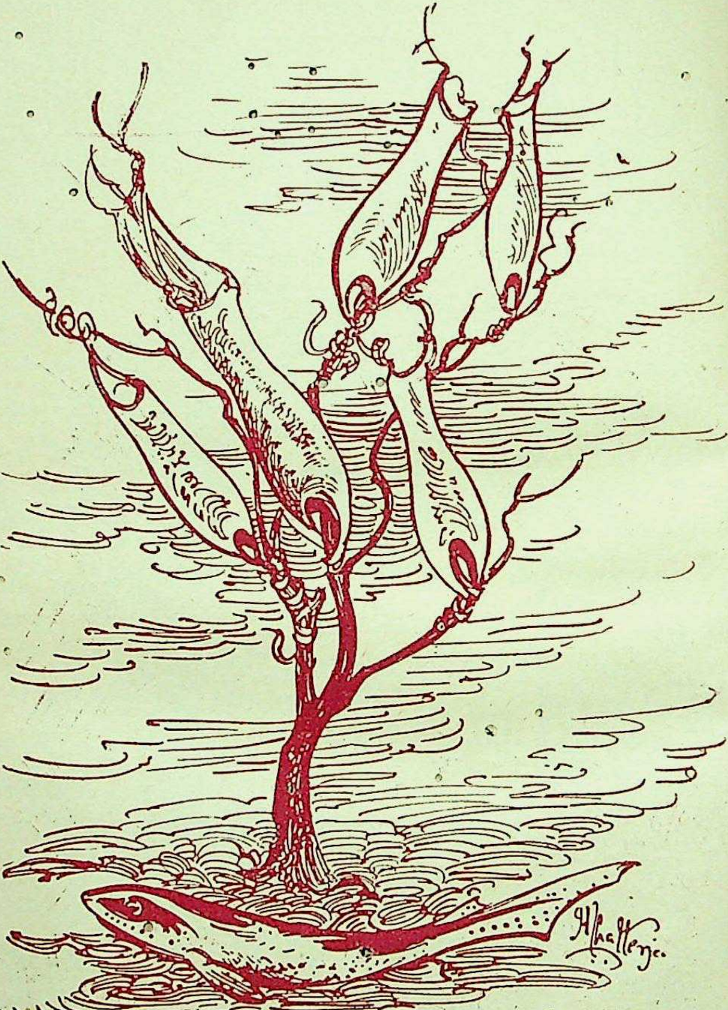

क्षुद्र बुन्दकित श्वान मत्स्य (पृष्ठ ७७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

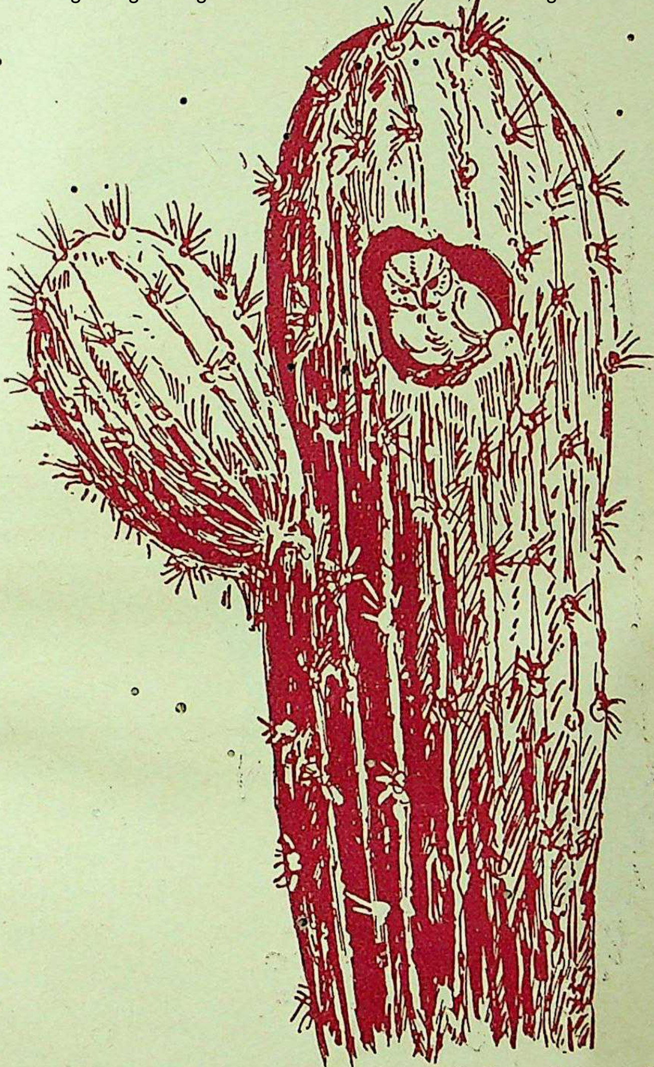

क्षुद्र उलूक का नागफनी के बृहद कांटे में घोंसला (पृष्ठ ७८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाग्रीगस (धनेश) का घोंसला (पृष्ठ ७६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय नहीं लगाना पड़ता। वे पहले से ही ढूहे की रचना कर संतोष कर लेते हैं।

सेने की झंझट न मोल लेकर केवल अंडा देकर ही चुप लगा जाने की प्रवृत्ति सभी सरीसृपों में पाई जाती है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि पक्षियों का उदय सरीसृप वर्ग से ही हुआ, अतएव हम दीर्घचरण (मेगापोड्स) वंश के ब्रश टर्की में केवल ढूहा बनाकर अंडा रख देने की वृत्ति को अपनी पूर्व वर्गीय सरीसृपों की प्रवृत्ति का पुनरुद्धार करते कह सकते हैं।

दीर्घचरण पक्षी भूमि पर ही रहने वाला होता है। अतएव वह भूमि पर ही अंडे देने की क्रिया प्रदर्शित करता है। परन्तु उसमें अंडा न सेने की सरीसृपों की वृत्ति उभड़ी जहाँ देखते हैं, वहाँ एक विचित्र दृश्य हमें एक जाति के चूहों द्वारा निर्मित अद्भुत घोंसलों रूप में दिखाई पड़ सकता है जो किसी भी पक्षी के घोंसले से होड़ ले सकने में समर्थ होते हैं। ये घोंसले टहनियों या पौधों के दृढ़ डंठलों से लटके होते हैं। यह घोंसला घास की पत्तियों से ही मुख्यतया बना होता है। यह कभी-कभी कई पौधों के डंठलों को सम्बद्ध कर भी बना देखा जा सकता है। अनाज के पौधों के अवलम्ब से ऐसे बने घोंसले घरेलू चूहों की बिलों से विशेष अद्भुत कहे जा सकते हैं। इन घोंसलों की दीवाल पतली हो होती है किन्तु वह इतनी दृढ़ होती है कि चुहिया के सारे परिवार को आश्रय दे सकती हो। एक चुहिया के सात या आठ बच्चे उत्पन्न होते हैं, अतएव उसका परिवार छोटा नहीं कहा जा सकता। अतएव तृण निर्मित घोंसले की यथेष्ट पुष्टता का प्रमाण हमें मिलता है। जब तक बच्चे स्वयं खाना-दाना ढूँढ़ सकने योग्य नहीं हो जाते, तब तक चुहिया अपने इस लम्बे परिवार को उसी घोंसले में पालती रहती है। यह कौशलपूर्ण रचना शीत देशीय मूषक की ही है। अतएव घोंसले की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रचना केवल एक ऋतु के लिए ही अनुमानित की जा सकती है। शीत के आगमन पर सारा परिवार भाग कर धरती में बने विवर में जाकर शरण लेता है तथा शीत से बचने के लिए निष्क्रिय अवस्था में पड़ा रहता है।

फसल के समय घोंसला बनाने वाले मूषक को यदि शस्यमूषक नाम दिया जाय तो अनुचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें घोंसला बनाने से भी एक अन्य विचित्र कौशल पाया जाता है। इसकी दुम को करामाती कहा जा सकता है। उसकी पकड़ में कोई अवलम्ब की वस्तु उसे किसी बेतुके स्थान पर भी पहुँचने के लिए सुविधा कर सकती है। किसी गेहूँ की वाली पर बैठा हुआ मूषक अपनी दुम से नीचे के डंठल में फाँस बनाये रह कर निर्द्वन्द्व रह सकता है। ऐसे कौशल से ऊँची फुनगी से अन्न का दाना या वाली तोड़ कर संग्रह करना एक सुगम कार्य होता है। अपनी पूँछ से यह कौशल कर दिखाने वाला अन्य कोई भी यूरोपीय स्तनपायी जन्तु दृष्टि नहीं आता। दुम के छोर से कोई वस्तु जकड़े रहने की शक्ति से चुहिया को फसल के डंठलों के शीर्ष पर कबूतरबाजी के खेल दिखाने में कोई हिचक नहीं होती।

घोंसला निर्मायक चुहिया लाल भूरे रंग का शरीर तथा श्वेत मुखाग्र रखती है। इसकी लम्बाई दुम को छोड़कर केवल दो इंच होती है। इसके शरीर की तौल केवल $\frac{1}{6}$ औंस होती है।

गोबर का गुबरैला एक घृणित जन्तु प्रतीत होता है। किन्तु इसमें सन्तान-प्रेम का जो अद्भुत उदाहरण पाया जाता है वह उल्लेखनीय बात है। जब अंडे नहीं दिये गये होते, तभी से इसमें चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। गुबरैला घोड़े की लीद या ऊँट अथवा भेड़ की लेंड़ी को अपना आहार बनाता है। इनकी गोली बना कर वह लुढ़का ले चलता है। उसे इन गोलों को पीछे की ओर चलते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही ढकेले ले जाते देखा जा सकता है। उसकी यह खाद्य निधि किसी विवर या कोमल भूमि में पहुँचाई जाती है। वहाँ वह इसे सावधानी से संचित रखता है। जब उसे आहार की आवश्यकता होती है तो उसका ध्यान अपनी परिश्रम से ढोकर लाई लीद या लेंड़ी की गोली पर जाता है। हम जिसे निकृष्ट उपेक्षा की वस्तु समझते हैं वह इसकी प्राण-रक्षिका होती है।

गुबरैलों को इन गोलियों के ढोने में सामूहिक प्रयत्न करते देखा जाता है। वे इनका स्वयं ही आहार नहीं करते, प्रत्युत अपनी संतान का भी पालन इसके आधार पर करने के लिए अण्डे को इसके ऊपर ही रखते हैं। जब अंडे से बच्चा बाहर होता है तो वह अपने निकट इस गोली रूप में भोजन की सामग्री प्रस्तुत पाता है।

मिस्र का एक सुनहरा गुबरैला अति प्रसिद्ध है। मिस्र के सभी स्मारकों के निकट पक्ष खोले या बन्द किये सुनहरे गुबरैले दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन मिस्र में इन गुबरैलों को पूज्य माना जाता था। उनके स्वर्ण तथा रत्नजटित गंडा ताबीज इनके आकार के अनुरूप ही निर्मित होते थे। इन ताबीजों को मिस्रवासी बड़ी उत्सुकता से धारण करते थे। इन यन्त्र-मंत्र की बातों की आस्था इतनी अधिक थी कि वे अपने गले में इन ताबीजों को पहने ही समाधिस्थ होना पसन्द करते थे।

रुपहला जलगुबरैला एक दूसरी जाति है जो पानी के अन्दर घोंसला बनाती है। जलगुबरैला प्रायः सर्वदेशीय जन्तु है। जलगुबरैला मुक्त पवन में श्वास लेने वाला जीव है, परन्तु जल में रह सकने का गुण वह अर्जित कर सका है। वह वायु का भंडार जल के भीतर ले जाने की युक्ति करता है। उसके उदर के पीछे के भाग के रोम वायु की यथेष्ट मात्रा बँधी रख लेते हैं। उनके ऊपर दृढ़,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चमकीली पंख-पेटिका आवेष्ठित होती है, इसलिए वायु की मात्रा उसके तले फँसी रह सकती है। इस जीव के उदर का अधो भाग वायु की पतली तह से आवेष्ठित-सा होता है, इस कारण उसकी रुपहली आभा दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि इस गुबरैले को रुपहला कहा जाता है। इसके मुखाग्र में क्षुद्र श्वास नलिका मूँछ रूप में होती है। पानी के ऊपर आने पर उनसे ही गुबरैला श्वास लेता है। अपने पिछले पैरों को बारी-बारी से हिला कर यह लहरिया रूप से पानी में तैरता है। शैवालपूर्ण गन्दे तालाबों, खाइयों, नालियों आदि में इस गुबरैले का निवास होता है।

रुपहले जलगुबरैले का कौशल पानी के तल पर अंडा देने के लिए नन्हा घोंसला बनाने में है। मादा जलगुबरैले के शरीर में मकड़ी की भाँति तन्तु उत्पन्न करने वाली ग्रंथि होती है। वह पानी पर तैरती किसी पत्ती या शैवाल से उलटा लटक जाती है तथा अपने तन्तुनिर्मायक अंग से जाला की परत बुन देती है। वह परत नतोदर होती है। फिर दुबारा ठीक स्थिति में होकर वह फिर दूसरी परत निर्मित कर पहली परत से जोड़ कर तन्तुमय नलिका या जाले की कुप्पी-सा बना लेती है। इस तंतु निर्मित घोंसले को जल-तल पर तैरती वस्तुएँ तैराती रहती हैं। उसमें ऊपर की ओर एक क्षुद्र मस्तूल या बुर्ज-सी वस्तु निकली होती है। अनुमान किया जाता है कि यह मस्तूल ही कदाचित् वायु के घोंसले में पहुँचने का आधार हो। यह घोंसला चार घंटे में बनकर तैयार हो जाता है तथा सोलह दिन में अंडे से इल्ली बाहर निकल आती है। यह इल्ली मांस-भक्षक होती है। वह जल-घोंघे को उदरस्थ कर जाती है। अंडे से इल्ली कब निकली, फिर इल्ली को साधारण गुबरैले का रूप कब मिला, इसकी चिन्ता करने या देखने का अवसर जल-गुबरैले को नहीं होता। वह अण्डे देकर उसके आश्रय का प्रबन्ध कर अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्त्तव्यों की इति समझ लेता है, किन्तु प्रकृति इस अभ्यागत शिशु का पालन-पोषण स्वयं ही होने देती है।

मधु-मक्खियों की छत्ता बनाकर सामूहिक रूप में रहने वाली जाति को हम जानते हैं। परन्तु एकाकी जीवन बिताने वाली मधु-मक्खियाँ भी पाई जाती हैं जिनकी जाति सामूहिक जीवी मधु-मक्खियों से बहुत अधिक होती है। एकाकी जीवी मधु-मक्खियों को मोम का छत्ता बनाने का उदाहरण उपस्थित करते कहीं भी नहीं देखा जा सका है। वे किसी प्रकार अन्य साधनों से अपने अण्डे देने की ही व्यवस्था रखती हैं। ये व्यवस्थाएँ अनेक पदार्थों के अन्दर बने छिद्रों को ही सँवारने या स्वयं नया विवर बना सकने की होती है। हम इन रूपों के विविध प्रकार के निर्वाचित या स्व-निर्मित विवरों के विचित्र उदाहरण पाते हैं। एकाकी मधु-मक्खियाँ अंडा देने के पूर्व उसकी रक्षा का प्रबन्ध अवश्य कर जाती हैं, परन्तु बाद में उसके सेने या उनसे बच्चा उत्पन्न होने की क्रिया को स्वयं नहीं देखतीं। वे प्रायः बच्चा उत्पन्न होने के पूर्व ही मृत भी हो चुकी रहती हैं। किन्तु शिशु-रक्षा का पूर्व उद्योग भी बड़ी चमत्कृत वस्तु होती है। उसका कुछ वर्णन पठनीय हो सकता है। इसके घोंसले या अण्डों के पलने के आश्रय-स्थल कहीं भूमि में हो सकते हैं या कहीं दीवालों के अन्तराल, सड़ते-गलते काठ के छिद्र या अनेक स्थलों में हो सकते हैं, किंतु उनके घोंसले की रचना या सजा-वट के उपकरण केवल वनस्पतिजन्य होते हैं।

एक मधुमक्खी एकाकी जीवी तो होती है, परन्तु उसे फूलों की पङ्खड़ियाँ या पत्र एक विशेष आकार का काट कर अपने नव-जनन-शील शिशु की रक्षा के लिए विवर के अन्दर शय्या तथा आवरण रूप में उपयुक्त करने की बुद्धि होती है। पत्रकतरक मधुमक्खी नाम देना इसके लिए उपयुक्त हो सकता है। इसके द्वारा पत्र के सपाट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किनारों के निश्चित आकार के कटे भाग ऐसे ज्ञात हो सकते हैं मानों किसी कुशल कलाकार ने उन्हें काटा हो। अभीष्ट आकार का खंड कुतर कर जब यह अपने शरीर से समकोण बना कर इस खंड को लेकर उड़ चलती है तो इसको पत्राकार ही आसित पाया जा सकता है। इन सुडौल आकारों के गोलाकार या अंडाकार खंड विवर के मध्यकोष्ठक बनाने में उपयुक्त होते हैं। इनको ही उन कोष्ठकों का ढक्कन बनाया देखा जा सकता है। कोई एकाकी मधु-मक्खी किसी विशेष पुष्प से रुचि रख सकती है। एक एकाकी मधु-मक्खी केवल गुलाब-प्रिय होती है। गुलाब की पत्ती या पंखड़ी को ही वह घोंसले के निर्माण में उपयोग करती है तथा उसके पराग-कणों को अंडे से उत्पन्न होने वाले शिशु के आहार के लिए रक्षित कर जाती है।

इस वर्ग की मादा मधुमक्खी किसी सड़ते स्तम्भ या गलित काष्ठ में एक फुट तक गहरा विवर बना लेती है। उसी में पत्तों या पंखड़ियों से अलग-अलग कोष्ठक बनाकर एक-एक अंडे रखती है। अंडाकार पत्र खंड से बने कोष्ठक का मुँह गोलाकार पत्र खंड से ढका होता है। एक विवर या सुरंग कोष्ठक-मालाओं से भरी होने पर अन्य विवर भी निकट-निकट निर्मित हो सकते हैं। एक कोष्ठक के ऊपर दूसरा, तथा दूसरे पर तीसरा लदा रहकर एक-एक अंडे के लिए यथेष्ट स्थान रखता है जिसमें नवजात शिशु बढ़कर स्थान पा सकता हो।

गुलाबप्रिय एकाकी मधुमक्षिका के घोंसला-निर्माण कौशल से होड़ लेने वाली वह एकाकी जीवी मधुमक्षिका भी होती है जिसे राजगीर मधुमक्षिका कहते हैं। वह मधु तथा पराग-जगत की वासिनी मधुमक्षिका किन प्रवृत्तियों से धूल कीचड़ के स्तर पर उतरती है, बताने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है; परन्तु मिट्टी तथा मधु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीचड़ के द्वारा अपने नये शिशु के आश्रय के लिए घोंसला बनाने का उद्योग कर भी यह अपना निर्माण-कौशल दिखा जाती है। यह राजगीर मधुमक्षिका मिट्टी, बालू के कण या नन्हें कंकड़ अथवा काठ के छीलन को परस्पर चिपकाकर कोष्ठकों का निर्माण करती है। चिपकन उपकरण कदाचित् उसकी लसिका ग्रन्थि से स्त्रवित रस होते हैं। विवर के अनेक रूप हो सकते हैं, परन्तु बने बनाये छिद्रों या अंतरालों में ही काम चला लेने में एक एकाकी जीवियों को सुविधा ज्ञात होती है। सामूहिक जीवी मधुमक्षिकाएँ अपने पिछले पैर में परागवाहक पेटिका स्थित रखती हैं। परन्तु एकाकी जीवी मधुमक्षिकाओं में उदर के अधोभाग में परागवाहक तूलिका होती है।

एक एकाकीजीवी मधुमक्षिका घोंघे के खोखले प्रकवच के अन्दर अपने अंडों के लिए आश्रय स्थल बनाकर घोंसले का काम लेती हैं। इन खोखले घोंघों के अन्दर अंडों से बच्चा निकलने पर उनके लिए भोजन सामग्री प्रस्तुत रहने के लिए पराग के गोले संचित होते हैं। यह सब व्यवस्था कर अंडा दे चुकने पर घोंघे के प्रकवच का मुख भली-भाँति बन्दकर शत्रुओं के प्रहार से रक्षा का निश्चय कर लेती है।

एकाकीजीवी ततैया या बर्रे की कथा इन मधुमक्षिकाओं के समान पाई जा सकती है। मादा बर्रे ही उल्लेखनीय कार्य करती है अतएव घोंसले के निर्माण में नर की बात बिल्कुल भूली जा सकती है। मादा बर्रे अपने अथक उद्योग तथा पराक्रम से अपने नये उत्पन्न होने वाले बच्चे के लिए सुरक्षित घोंसले का निर्माण करने का कौशल दिखाती है। यह अपने अंडे से उत्पन्न इल्ली को समूचे कीट का आहार देना पसन्द करती है। इसलिए कोई कीट डंक मारकर मूर्च्छित कर लिया जाता है और घोंसले के अन्दर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बंद कर दिया जाता है। मूर्च्छित करने के लिए डंक का विष प्रभावी-कारी होता है। उससे कीट जीवित रहकर भी उठ खड़ा नहीं हो सकता अतएव इल्ली उसका आहार निस्संकोच करने का अवसर पाती है। परन्तु उस इल्ली के उत्पन्न होने तथा आहार करने की घटना बर्रे की दृष्टि में आने वाली बात नहीं होती। वह तो विवर या घोंसले का मुँह बन्द कर अपना उत्तरदायित्व समाप्त कर चुकी होती है। सुरक्षित आहार को खाकर नवजात शिशु बर्रे का छोटा रूप पाकर लड़खड़ाता बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। आवरण रूप की दीवाल फोड़कर वह बाहर निकलने का द्वार बनाकर ही सहारा लेकर निकल पड़ता है। फिर नये घोंसले या विवर बनाने का क्रम उसके द्वारा पुनरावृत्त होकर बर्रे की वंश-परम्परा को आगे बढ़ाता है। इन एकाकी ततैया या बर्रे जातियों में से प्रत्येक को किसी विशेष कीट को आहार बनाने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इस प्रवृत्ति को उनकी अगली पीढ़ियाँ भी स्वयं अनुप्रेरित होकर सुरक्षित रखती पाई जाती हैं। इनमें हम बर्रे की जाति को कुम्भकार ततैया कह सकते हैं। यह नन्हें घड़े मिट्टी के द्वारा ऐसी बनाती हैं जिसका नन्हा पतला मुँह होता है। ये घट किसी टहनी से लटके या अवलंबित होते हैं। तैयार घट में अनेक मूर्च्छित किये कीड़े भर कर अंडा रखा होता है और बर्रे उसका मुँह मिट्टी से बन्द कर देती है। इसमें ऊपरी सिरे से एक सूक्ष्म तार द्वारा अंडा भीतर लटकाया रहता है।

बहुत से जन्तु अपने अंडों की रक्षा के विविध साधन करते पाये जाते हैं, परन्तु बहुतेरे जीव अंडों को असीम संख्या में उत्पन्न कर उनकी अगणित संख्या में से बच सकने वाले अंडों द्वारा ही वंश-रक्षा पर विश्वास करते हैं। मेढक तथा मछलियाँ अपनी भारी-भारी संख्या के अंडों पर संतानवृद्धि के लिए निर्भर होती हैं। मेढक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की अधिकांश जातियों को पानी में अंडे फेंक देते पाया जाता है। कितने अंडे अन्य जंतुओं के आहार बन जाते हैं, परन्तु बचे हुए अंडों से ही अपार शिशु-उत्पत्ति होती है। इस व्यवस्था से संतुष्ट न होकर कुछ मेंढकों को अपने अंडे सीमित संख्या में ही उत्पन्न कर उनकी रक्षा के साधन ढूँढ़ने की बात पाई जाती है। वे कुछ उन्नत जीवन स्तर पर पहुँचे कहे जा सकते हैं। ब्राजील का वृक्षारोही मंडूक ऐसे वर्ग के मेंढकों में गिना जा सकता है। इस जाति के नर और मादा दोनों ही मेंढक अंडे देने की ऋतु में पानी के नीचे पहुँच जाते हैं। इनमें अंडे के लिए घोंसला बनाने का भार मादा मेंढक अपने ऊपर लेती है। वह किसी जलाशय के छिछले छोर को चुन लेती है तथा पेंदे तक गोता लगा कर अपने चौड़े मस्तक पर कीचड़ उठा लाती है। उससे मेंड बनाकर वह अपना एक क्षुद्र जलाशय निर्मित कर लेती है। अगले पैर या भुजा से वह उसको भीतर से चिकना देती है। वह उस समय तक निर्माण कार्य करती जाती है जब तक दीवाल पानी के ऊपर तक पहुँच जाती है। इस प्रकार एक घिरा हुआ क्षुद्र जलाशय बनकर तैयार हो जाता है। दो रातों में यह कार्य पूर्ण कर लेती है। फिर अंडे देकर वह नर के साथ मिल कर उस क्षुद्र जलाशय की चौकीदारी करना प्रारंभ कर देती है।

पाँच दिन में मेंढकियों का जन्म हो जाता है, किंतु वे पुष्ट होने तक उस क्षुद्र जलाशय में ही सुरक्षित पड़े रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनमानुष तथा उसके अन्य बंधु

मनुष्य प्राणियों का सिरमौर कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने जन्तु-जगत का आपेक्षिक अध्ययन करने के लिए उनके शरीर की रचनाएँ देख-देखकर भेद विभेद करने के प्रयत्न किये जाते हैं। माता की कोख से सदेह ही उत्पन्न होने तथा माता का दूध पीकर पलने वाले जन्तुओं को स्तनपायी नाम दिया गया है। मनुष्य भी स्तन-पायिओं में से एक विभेद है। शारीरिक रचना की तुलना कर यह जानने का भी प्रयत्न किया गया है कि मनुष्य के विशेष निकट रूप के कौन से जंतु हो सकते हैं। दाँतों की रचना तथा संख्या से इस संबंध में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

मनुष्य के मुख में वयस्क होने पर बत्तीस दाँत होते हैं उनमें १६ दाँत ऊपरी हनु या जबड़े में होते हैं और १६ दाँत नीचे के हनु में जड़े होते हैं। इन सोलह दाँतों में सामने की ओर चार दाँत प्रत्येक हनु में विद्यमान होते हैं जिनको कुतरने या काटने का (कर्तनक या छेदक) दाँत कहते हैं। प्रत्येक हनु में इन चारों दाँतों के दोनों ओर एक-एक बड़े दाँत होते हैं। उन्हें कुकुरदन्ता (रदनक) कहा जाता है। कुत्तों में ये दाँत बाहर तक निकले दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक हनु में चार कर्तनक तथा उनके पीछे एक-एक रदनक के बाद दोनों पार्श्व में पीछे की ओर चबाने वाले (चर्वणक) दाँत शेष संख्या की पूर्ति करते हैं। इन चर्वणक दाँतों की जड़ दो फाँकों की होती है तथा ऊपरी सिरा फटी रेखा-सी झलका कर कूटे हुए सिल की तरह विषम तलयुक्त होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य के दाँतों के अनुरूप ही वनमानुषों की दन्तावली होती है किन्तु अकेले वनमानुष ही इस विषय में साम्य नहीं दिखाते, प्रत्युत लंगूर और वानर भी इसी प्रकार की दन्तावली रखते हैं। उन सब में पैर भी हाथों के अनुरूप ही होते हैं जिनमें अंगुलियों में कुछ-कुछ अंडाकार से नख होते हैं। अन्य जंतुओं की तरह हाथ या पैर की उँगलियों में चंगुल नहीं पाया जाता। अतएव इनको मानव निकटवर्ती जंतु समझा जाता है।

ओरन ओटन

विकासवाद मत का प्रतिपादन होने पर किसी प्राचीनतम युग में सतयुग या स्वर्णकाल होने का विश्वास रखने वाले पुरातन-वादियों ने बड़ा ही बावेला खड़ा किया था और उपहासपूर्वक कहने लगे थे कि विकासवादियों के पूर्वज भले ही वानर, लंगूर या वनमानुष रहे हों परंतु उनके पूर्वजों की ऐसी दुर्गति नहीं थी। केवल विश्वासों या मन्त्रों से तो प्राचीनकाल की अकाट्य सत्य घटना बदल नहीं सकती। भूगर्भ विज्ञान के दृढ़ प्रमाणों से यह निर्विवाद हो सका है कि सारी सृष्टि का निम्नवर्ग से उच्चवर्ग की ओर विकास हुआ। कभी-कभी अपवाद रूप से अवरोध या अधोगति अपना प्रमाण दिखाती है, परन्तु जीवों का क्रमिक विकास तो अकाट्य सत्य है। परन्तु हम यहाँ पर विकासवाद या सृष्टि के

ओरन ओटन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विकास की चर्चा न कर केवल मानव के अनुरूप अन्य जंतुओं की ही बात उल्लिखित कर रहे हैं। साम्य क्यों हो सकता है, उसकी कल्पना के लिए ही यहाँ विकासवाद का नाम लिया गया है।

मानव अनुरूप जंतुओं या बनमानुष में ओरन ओटन का नाम उल्लेखनीय है। यह जंतु केवल आकार प्रकार में ही मनुष्य की अधिक समता नहीं प्रदर्शित करता, बल्कि बुद्धि में भी अपने को मनुष्य का निकटवर्ती सिद्ध करता है। अन्य जंतुओं से सबसे अधिक बुद्धि इसमें पाई जाती है। ओरन ओटन की दो जातियाँ पाई जाती हैं। एक काले रंग की जाति अफ्रीका में पाई जाती है। दूसरी रक्तिम या बादामी रंग की जाति पूर्वी द्वीप समूहों में रहती है। इनकी बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं।

रक्तिम या बादामी ओरन ओटन मानव के सबसे अधिक अनुरूप पाया जाता है। काला ओरन ओटन मानव रूप से उतना अधिक अनुरूप नहीं होता। इसका मुख कुछ अधिक उभड़ा होता है। इसकी ऊँचाई दो फीट के लगभग होती है।

दोनों रंगों के ओरन ओटन का स्वभाव बन्दी रूप में बड़ा शान्त होता है, अन्य समकक्ष जंतुओं—लंगूर, बंदर आदि की तरह उद्धत या भयानक नहीं होता। वे मानवकृत्यों का भली-भाँति अनुकरण करते हैं।

ओरन ओटन की कुशलता का वर्णन अनेक स्थलों पर पढ़ने को मिलता है किंतु इन बातों का यह अर्थ नहीं कि वे मानव के ही बंधु हैं। अनेक रूपों में ये विशद जंतु मनुष्य की शारीरिक रचना से विभेद भी रखते हैं। अस्थि विज्ञान का विशेष अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का कथन है कि ओरन ओटन की रचना अन्य जंतुओं की तरह भागने तथा वृक्षारोहण के लिए ही हुई जान पड़ती है। धरातल पर सीधे रूप में चलने के लिए उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंकाल की रचना नहीं जान पड़ती। यह बात अवश्य सत्य है कि वे चाहें तो दो पैरों पर खड़े भी हो सकते हैं। यह शक्ति अन्य पशुओं में इतनी सरल नहीं होती। अन्य बनमानुषों की तरह ओरन ओटंन में भी पूँछ का सर्वथा अभाव होता है।

डा० टायसन नाम के एक वैज्ञानिक ने सत्रहवीं शताब्दी के अंत में ओरन ओटन के संबंध में अपना अनुभव निम्न प्रकार दिया था—

"यह अत्यधिक शान्त तथा प्रियपात्र जंतु है। जहाज पर जिनसे वह परिचित हो सका था, उनसे बड़े स्नेहपूर्वक लिपट जाता। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि जहाज पर यद्यपि अन्य बंदर थे, परन्तु ओरन ओटन उनसे मेल-जोल कभी नहीं रखता, उनसे बराबर दूर रहता है।"

एक अन्य विद्वान ने भी एक ओरन ओटन का विशेष उल्लेख किया है जिसकी ऊँचाई ढाई फीट तथा रंग बादामी भूरा था। उसका स्वभाव किसी प्रकार की भयानकता या उद्धतपन रहित था। वह मनुष्य के सम्पर्क में रहना चाहता। जो व्यक्ति उसकी दैनिक देखभाल करते उनसे विशेष हिल-मिल जाने का इतना परिणाम हुआ कि वे जब-जब विश्राम करने के लिए उसे छोड़कर जाने लगते तो वह उदास-सा हो कराहने का सा शब्द कर भूमि पर लोट जाता। उसके सेवक पुरुष निकट बैठते, तो वह उन्हें नंगी भूमि पर बैठा देखकर अपने बिछाने के पुआल निकाल-निकालकर उसकी गद्दी या आसनी-सी बना देता और अनेक रूप के संकेतों से सेवक को उस पर बैठ जाने को कहता।

गिब्बन (प्रलंबबाहु बनमानुस)

गिब्बन या प्रलंबबाहु वन्य मानव की दो जातियाँ होती हैं। एक काले रङ्ग की तथा प्रलंबबाहु होती है। इस जाति के गिब्बन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के हाथ इतने लम्बे होते हैं कि खड़े होने पर उसकी अंगुलियाँ भूमि स्पर्श करती हैं। यह भारतीय जन्तु है जिसकी लम्बाई तीन फीट

गिब्बन

होती है। इस प्रलम्बबाहु बनमानुस या गिब्बन की दूसरी जाति श्वेत रंग की होती है। केवल हाथ तथा मुख का रंग श्वेत नहीं होता। इसका रूप मनुष्य से बिल्कुल मिलता जान पड़ता है।

वामन बनमानुस गिब्बन की छोटी जाति होती है। विश्वास किया जाता है कि प्राचीन गिब्बन की जाति ही नाटे आकार की हो गई होगी। इस कारण वामन गिब्बन संसार में दिखाई पड़ता है। यह सारस पक्षियों से युद्ध करने के लिए विशेष प्रसिद्ध कहा जाता है।

गिब्बन का निवास दक्षिणी पूर्वी एशिया में है। यह पुच्छ-हीन बनमानुसों में सबसे छोटा जन्तु है। यह वृक्ष पर अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन व्यतीत करता है। इसी कारण इसकी भुजाएँ लम्बी होती हैं। पुच्छहीन वनमानुसों में वानरों की तरह मुख में खाद्य द्रव्य एकत्र कर रखने की विशेष थैली नहीं होती। अतएव गिव्बन में भी उसे नहीं पाया जा सकता। ये मनुष्य के अधिक निकट स्वभाव के होते हैं। वानरों या लंगूरों को चारों पैर पर चलते पाया जाता है, परन्तु पुच्छहीन, वनमानुस चारों पैर पर कभी नहीं चलता, परन्तु साथ ही उसे सीधे खड़े होने में भी असुविधा ही होती है। वे खड़ा होना सीखते हुए बच्चे की भाँति कमर पीछे-सी किये आधा ही खड़े होते हैं। कोई अवलम्ब मिलने पर वे सीधे खड़े अवश्य हो सकते हैं, परन्तु चलने के लिए हाथों को भूमि पर कुछ स्पर्श करते रखना पड़ सकता है। उसमें यह स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि भूमि पर हाथ या अगले पैर का तला न रख कर ये आधी मुट्ठी सी बाँध कर हथेली के विपरीत तल या उँगलियों के पिछले तल को ही भूमि पर अवलम्बित करते हैं। यह वृत्ति प्रकट करती है कि वे चारों पैरों पर चलने का क्रम छोड़ कर दो पैरों पर चलने की वृत्ति के अधिक निकट हैं। गिव्बन डालों से कूदने में इतने प्रवीण होते हैं कि १८,२० फीट दूरी की दूसरी डाल तक पहुँच सकते हैं।

गिव्बन मुख्यतः वृक्ष जीवी जन्तु है। एक गिव्बन को एक डाल से उछल कर दूसरी डाल तक जाने पर देखा गया कि बीच में ही उसने एक हाथ से उड़ती चिड़िया पकड़ लिया और दूसरे हाथ से दूसरी डाल जा पकड़ा। फिर डाल पर आराम से बैठ कर उसने चिड़िया के पङ्ख नोंच कर उसे नीचे फेंक दिया।

गिव्बन को चौपायों की तरह मुँह पानी के तल तक ले जाकर पानी पीते देखा जाता है किंतु यह मनुष्य की तरह हाथ से पानी उठा कर भी पीता पाया जाता है।

यह तीन फुट लम्बा होता है। इसके वक्षस्थल में प्रत्येक ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेरह पसलियाँ होती हैं। हाथ तथा पैर के अंगूठों में चपटे नख होते हैं।

बैबून

बैबून अपनी लम्बी पूँछ और पुष्ट शरीर के लिए प्रसिद्ध है। इनका मुख श्वान सदृश्य होता है जिसमें थूथन आगे बढ़ा रहता है। शरीर मांसल होता है। मैंड्रिल बैबून धूसर रंग का होता है। उसके शरीर पर के बाल सूक्ष्म धूमिल धब्बों से घने रूप में

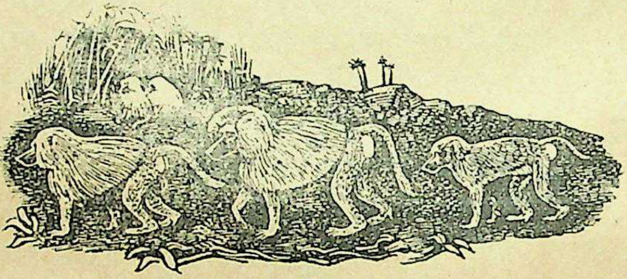

बैबून

आच्छादित होते हैं। इसके सिर के दोनों ओर गलमुच्छे की भाँति बालों की बाढ़ होती है। वह स्कंध प्रदेश की ओर बढ़ी होती है। यह अफ्रीका में पाया जाता है तथा अन्य बैबूनों की भाँति भयानक वृत्ति का होता है। यह फलफूल और दाने खाकर रहता है। इससे बागों तथा कृषि को भारी क्षति पहुँचती है। मिस्र देश में प्राचीन काल में इस बैबून को पूज्य माना जाता था। प्राचीन लेख पत्रों में उसके चित्र अङ्कित पाये जाते हैं।

छोटी पूँछ का बैबून हल्के भूरे रंग का होता है जिसमें पीले रंग की पुट होती है तथा छोटे-छोटे काले रंग के घने छींटे भी होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। वयस्क बैबून में नासिका की पूर्ण लम्बाई का रङ्ग लाल होता है तथा कपोलों का रङ्ग चमकीला नीला होता है जिसमें दोनों ओर अनेक गहरी रङ्गीन पट्टियाँ भी चित्रित होती हैं। शरीर के निम्न भाग में चमड़ा बदलते हुए बैंजनी रङ्ग का होता है जिसमें लाल रङ्ग की

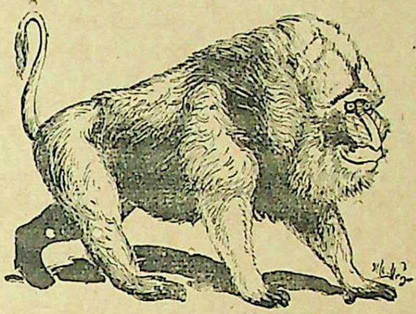

मैंड्रिल बैबून

झलक होती है। यह भी अफ्रीका के अनेक भागों में पाया जाता है।

मकड़ा बन्दर

कुछ बन्दर, विशेषकर अमेरिका में, ऐसे होते हैं जिनकी पूँछ साँप की तरह फेरा डाल कर कोई वस्तु पकड़ सकती है। ऐसी

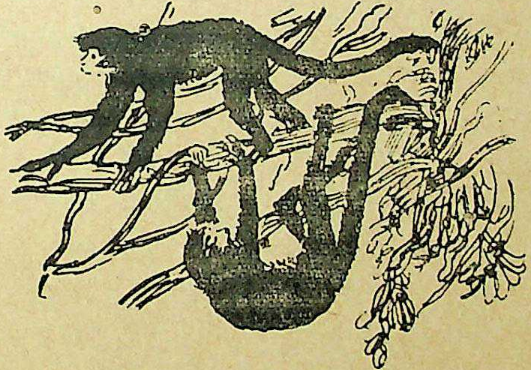

मकड़ी बन्दर

सर्पनुमा पूँछ को यह किसी डाल में लपेट कर पाँचवीं भुजा का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काम ले लेता है। हाथ और पैर वस्तुओं को पकड़ कर कहीं डाल पर चढ़ने या सँभाल सकने के काम आते हैं। अतएव उन्हें चार भुजाओं के समान कह सकते हैं, परन्तु उनकी पूँछ भी ऐसे कार्यों में अपनी विशेष सहायता पहुँचा कर पाँचवीं भुजा-सी बनती है। इस पाँचवीं भुजा अर्थात् लिपट सकने वाली दुम में ग्रहण शक्ति का विशेष प्रबन्ध रहता है। उसके अधोतल में बाल नहीं होते, बल्कि प्रायः नग्न तथा बहुत लचकदार त्वचा होती है।

चिम्पैंजी

चिम्पैंजी एक सजीव तथा शिक्षणशील जन्तु है। यह पानी के तल से मुँह लगा कर पानी पीता है, परन्तु सिखाने पर पानी का ग्लास हाथ से उठा कर पीता है। यह हाथ की उँगलियों के उलटे तल से भूमि पर अवलम्ब लेकर खड़ा होकर चल सकता है। कुछ दूर खड़े होकर भी चल सकता है। परन्तु दौड़ने की अवस्था में चौपाये के समान ही भागता पाया जाता है। यह भी वृक्षजीवी जन्तु ही है। यह वृक्षों पर अपने निवास बनाता है।

चिम्पैंज़ी

चिंपैंज़ी का निवास पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वनमानुसों में यह सबसे अधिक सिखाने योग्य सिद्ध होता है।

मारमोसेट

वानर शब्द का अर्थ ही मनुष्य समान है। वनमानुस का भी यही अर्थ कहा जा सकता है। वास्तव में अन्य जंतुओं की अपेक्षा अपने अधिक अनुरूप समझ कर ही मनुष्य ने इनको यह नाम दिया है। इन जंतुओं के दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो वे हैं जिनकी नासिका चपटी या उठी-सी होती है। दूसरा विभाग वह है जिसमें नासिका पतली या नीचे गिरी-सी होती है। पहले को ऊर्ध्व या स्थूल-नासिका कह सकते हैं तथा दूसरे को कृश या अधो-नासिका के जंतु कह सकते हैं।

मारमोजेट

स्थूल या ऊर्ध्व नासिका के वानर केवल अमेरिका में पाये जाते हैं। किन्तु पतली या अधो-नासिका के वानर यूरोप, एशिया और अफ्रीका में ही पाये जाते हैं।

चपटी नाक वाले वानरों में सब से छोटा आकार मारमोसेट का होता है। इसका आकार गिलहरी से बड़ा नहीं होता। इसके कान का छिद्र अत्यधिक रोमाच्छादित होता है। पूँछ लम्बी तथा बाल के गुच्छे के समान होती है, परन्तु उसमें लिपट कर कोई वस्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पकड़ लेने की शक्ति नहीं होती। यह प्रायः एक बार में तीन शिशु जनन करता है, परन्तु अधिकांश वानर एक बार में एक ही शिशु जनन करते हैं।

मारमोसेट या चपटी नाक के वानरों को मनुष्य की आदिम पीढ़ी की शाखा से अधिक दूर का कहा जा सकता है। इनमें उच्च वर्ग के मानव के निकटवर्ती वंश के जंतुओं की अपेक्षा निम्नतर वर्ग के जंतुओं से अधिक साम्य रखते पाया जाता है। मारमोसेट में उँगलियाँ अधिकांश भाग में चंगुल या नोकीले नखयुक्त ही होती हैं, केवल पैर के अँगूठे में चपटा नख होता है। पूँछ में अँगूठीदार रंगीन पट्टियाँ होती हैं। ये गुण निम्न वर्ग के जंतुओं में ही अधिक पाये जाते हैं।

लेमूर

लेमूर वानर के सदृश रूप रखने वाले ही जंतु हैं, परन्तु उनकी मुखाकृति अधिक सुन्दर होती है। इनकी दंतावली वानर सदृश ही होती है किन्तु निम्न कर्तनक (सामने के) दंत अधिक आगे निकले या बाहर झुके होते हैं। उनके साथ ही मिले हुए कुकुरदंते होते हैं। इनके पैर की रचना हाथ समान होती है और पिछले पैर की तर्जनी उँगली (द्वितीय पादांगुलि) प्रायः एक तीक्ष्ण लम्बोतरे नखयुक्त होती है। यह जंतु वनस्पति भोजी होता है किंतु इसकी कुछ जातियाँ मांसाहारी भी देखी जाती हैं।

लेमूर की एक जाति सर्वथा पुच्छहीन होती है किन्तु अन्य जातियों के लेमूर बड़ी लम्बी दुमों वाले होते हैं। पुच्छहीन लेमूरों को दीर्घसूत्री (सुस्त) लंगूर कहते हैं जो पूर्वी द्वीप समूहों तथा सीलोन में होते हैं। यह लेमूर अपनी सब प्रकार की गतियों में अत्यन्त ही शिथिल होता है। विशेषतया दिन को इसकी शिथिलता बहुत ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक होती है। एक दूसरा जंतु स्लाथ होता है जो सुस्ती में कछुए के भी कान काटता है। अतएव लोग दीर्घसूत्री लेमूर को "सीलोन का स्लाथ" कहने में संकोच नहीं करते, किन्तु यथार्थ में स्लाथ जाति के जंतु से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। एक लेमूर की जाति कुछ छोटे आकार की होती है। वह भी पुच्छहीन होती है। उसके सभी अंग कृश रूप के होते हैं अतएव उसे कृशकाय लेमूर कहा जाता है। यह दीर्घसूत्री लेमूर से स्वभावतः ही अधिक चपल और चैतन्य होता है।

लेमूर

लम्बपुच्छ लेमूर में सब से सुन्दर रूप का लेमूर मुद्रिकांकित पुच्छ लेमूर होता है। यह दीर्घसूत्री लेमूर के विपरीत गुण तथा रूप का जंतु होता है। यह बड़ा चपल तथा विचित्र सरलता से उछल-कूद करते रहने वाला जंतु है। इसकी एक जाति में पूँछ में अँगूठीनुमा पट्टियाँ होती हैं अतएव उसे मुद्रिकांकित पुच्छ लेमूर कहा जा सकता है। यह सहज ही पालतू बन जाता है। एक दूसरी जाति भूरे रंग की होती है। उसमें चितकबरा रंग नहीं होता। कुछ में वक्षस्थल पर लाल भूरा तथा उसके नीचे श्वेत रंग होता है।

लेमूर शब्द का अर्थ लैटिन भाषा में प्रेतात्मा है। ये जंतु रात को ही बाहर निकलते हैं, इस कारण इन्हें भूत या प्रेत माना जाता था। रात को नीरव तथा विचित्र रूप में दिखाई पड़ने से इनको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूत-प्रेत-सा मानना और भी स्वाभाविक था। मेडागास्कर में जो इंद्रिस लेमूर पाये जाते हैं उनके पैर हाथ की अपेक्षा बड़े होते हैं। कान छोटे होते हैं। पूँछ की लम्बाई विभिन्न होती है। अँगूठा अन्य अङ्गुलियों की विरुद्ध दिशा में थोड़ा ही घूमा होता है, परन्तु अन्य लेमूरों में अँगूठा अङ्गुलियों से विरुद्ध दिशा में यथेष्ट घूमा पाया जाता है। अङ्गुलियाँ झिल्ली से संलग्न भी होती हैं। जब यह भूमि पर चलता है तो पिछले पैरों पर खड़े होकर ही चलता है। अगले पैरों या भुजाओं को सिर के ऊपर किये रहता है। मुद्रिकांकितपुच्छ लेमूर में केवल तर्जनी उँगली छोड़ कर शेष सभी उँगलियों पर मनुष्य की तरह चपटे नख होते हैं।

लेमूरों में वक्षस्थल पर स्तन होता है। उनका मस्तिष्क दुर्बल ही होता है। द्वितीय उँगली (तर्जनी) में नोकीला चङ्गुल होता है। अपवाद स्वरूप कुछ लेमूरों में उदर स्थल पर स्तन होते हैं, किंतु तर्जनी को छोड़ कर शेष सभी उँगलियों में चपटे नख अवश्य होते हैं।

मादा लेमूर अपने बच्चे को उदर से चिपका लेती है। बच्चे को इसी प्रकार चिपकाये रख कर वह प्रायः चलती है। बच्चे की पूँछ मादा लेमूर की पीठ पर से घूम कर दूसरी ओर पुनः उसकी गर्दन में आ लिपटी होती है। इस प्रकार बच्चा सुरक्षित रूप से अपने शरीर को अपनी पूँछ द्वारा माता के शरीर से बँधा लटका कर चलता है। कंगारू सरीखे जंतुओं में थैली में शिशु रखने का ही यह स्थानापन्न विधान लेमूरों में पाया जाता है।

आई आई या चिरोमीज लेमूर विचित्र होता है। उसकी तीसरी उँगली पतली और बहुत लम्बी होती है। उसमें तथा अँगूठे में चपटे नख होते हैं, परन्तु शेष उँगलियों में चङ्गुल या नोकीले नख होते हैं। स्तन अधोउदर में स्थित होते हैं। पूँछ गिलहरी की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुच्छीय होती है। मझली लम्बी उँगली से वृक्ष के अंतरालों में छेदकर रहने वाली इल्लियों को वह टटोल कर ज्ञात कर लेता है और पैने दाँतों से काठ कुरेद कर इल्ली निकाल कर खा जाता है। किसी ने लम्बी उँगली से बाल सँवारते भी देखा है। यह पूज्य जंतु माना जाता है।

टार्सियस

टार्सियस तथा मेडागास्कर के आई आई लेमूर को मनुष्य के निकटवर्ती दुग्धपायी जंतु वर्ग की आदिम अवस्था का जीवित उदाहरण कहा जाता है। विद्वानों के मत से टार्सियस तो मानव-वर्ग के अग्रजों का निकटतम जंतु माना जाता है। यह विशाल नेत्रों से टकटकी बाँध कर देखते रहने वाला विचित्र जंतु निशा-जीवी होता है तथा वृक्षों पर जीवन व्यतीत करता है। यह जावा, बोर्नियो, फिलीपाइन तथा अन्य निकटवर्ती द्वीपों में पाया जाता है। विद्वानों का यह कथन है कि मनुष्य और वनमानुस एक ही टार्सियस वंश के आदिम स्रोत से विकसित हुए जिनकी अनेक शाखाएँ भिन्न-भिन्न रूप के जंतुओं को जन्म दे सकीं। इन विभिन्न शाखाओं से उत्पन्न जीवों में लेमूर, वनमानुस, वानर तथा मनुष्य की अनेक प्राचीनतम जातियों की गिनती की जाती है।

लेमूर की ही एक क्षुद्र जाति लारिस कहलाती है। जो भारत, सिंहल तथा अफ्रीका के कुछ भागों में पाई जाती है। यह रात्रि-जीवी जंतु है। इसके पूँछ नहीं होती। टार्सियस से मुखाकृति में कुछ समानता पाई जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नर जन्तुओं द्वारा शिशुपालन

सन्तानोत्पादन तथा शिशुपालन का कार्य मनुष्य स्त्री वर्ग का ही कार्य निर्धारित करता है परन्तु जन्तु जगत में अंडा सेने तथा नवजात शिशुओं के पालन-कार्य में नर को भी कितनी ही जातियों में भाग लेते देखा जाता है। केवल अंडा देने का कार्य-भार प्रकृति द्वारा मादा पर डाला गया है अतएव उसमें व्यक्तिक्रम की कोई सम्भावना नहीं हो सकती। शिशुओं के पालन करने में तो हम नर-पक्षियों को अधिकांशत: भाग लेते पाते हैं, परन्तु कुछ वर्गों के नर-पक्षी अंडा सेने में हाथ बटाते हैं। किन मानसिक प्रेरणाओं से नर ऐसे भाग का अनुयायी होता है, यह तो बड़ा दुरूह विषय है, परन्तु प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा हम उन जन्तुओं का नाम-धाम अवश्य ज्ञात कर सकते हैं जिनमें नर शिशुओं की रक्षा, भोजन प्रदान आदि में सहायक होता है।

मछलियों में शिशुपालक नर अधिकांश पाये जाते हैं, किंतु उनमें समुद्री अश्व नामक मछली का नर शिशुपालन में सर्वोपरि स्थान ग्रहण करता है। यह क्षुद्रतम समुद्री मत्स्य है किंतु इसका आकार इतना विचित्र और बेडौल होता है कि इसे मछली न कह कर समुद्री घोड़ा या अश्व कहना पड़ता है। घोड़े के मुँह की तरह इसका नोकीला थूथन आगे निकला होता है। शिशु अवस्था में तो यह थूथन उतना निकला नहीं होता, केवल लम्बा-सा मुँह ही रहता है। परन्तु धीरे-धीरे विकसित होकर प्रौढ़ावस्था में वह सामने होने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बजाय शरीर से समकोण या न्यून कोण-सा बना कर घोड़े के मुँह की तरह लटक आता है और इसको विचित्र रूप देता है। परन्तु इस जन्तु में केवल मुख की ही विचित्रता नहीं होती। इसकी पूँछ भी जलपरी समान इसका अंग प्रकट करती है। वह लम्बी तथा नोकीली होती है और मुड़ कर साँप की कुंडली समान बन कर किसी वस्तु को पकड़े रह सकती है। पूँछ के इस ग्राहक गुण के कारण समुद्री अश्व किसी जल-प्रवाहित वनस्पति या डंठल में पूँछ लपेट लेता है और उसके आश्रय से वायु के वेग या जल के प्रवाह के साथ बहता रहता है। वह स्वयं अपने प्रयत्न से अधिक तैर सकने वाला मत्स्य नहीं है। अतएव पूँछ के आश्रय से वह सहज भ्रमण करता रह सकता है। यह अर्द्ध उष्ण जल-खंडों में सर्वत्र पाया जाता है। इसे तैरा सकने के लिए स्कंध देश में अत्यन्त क्षुद्र मत्स्यपंख होते हैं। नेत्र स्थिर न रह कर स्वतन्त्र रूप से घूम सकते हैं। यह अपनी जीभ से झींगा मछली पर चपेट मार उसे आहार बनाता है।

समुद्री अश्व की अन्य विचित्रताओं की अपेक्षा नर में शिशु-पालन वृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। इसके शरीर के सामने के भाग पर चमड़े की दो पट्टियाँ होती हैं जो संयुक्त होने पर एक थैली-सी बना लेती हैं। यही उसके अंडे सुरक्षित रखने की थैली होती है। एक या अनेक मादा समुद्री अश्व नर की इस थैली में अंडे देकर अपने सन्तानोत्पादन कार्य के शेष उत्तरदायित्व से मुक्ति पा जाती हैं। वह सब भार नर समुद्री अश्व पर ही होता है। थैली में मादा द्वारा प्रविष्ट किये अंडों को नर गर्भाधान्वित या सेचित करता है। उस थैली में अंडों को उसी प्रकार पोषण द्रव्य प्राप्त होता है जैसे गर्भाशय में गर्भस्थ शिशुओं को माता के शरीर से प्राप्त होता रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अंडा सेने का क्रम नर को ४० या ५० दिन तक करना पड़ता है। इस अवधि में वह जल में खड़े रूप से अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार तैरता रहता है। जब वह पूँछ सीधी कर लेता है तो पानी में ऊपर उठता है किंतु नीचे पेंदे की ओर जाने के लिए उसे पूँछ कुंडली समान लपेट लेनी पड़ती है। अपनी पूँछ तथा स्कंधदेशी मत्स्यपत्रों को गतिशील करने से वह समुद्र के पेंदे में भी मन्द गति से चल सकता है। नर की विशेष थैली में कुछ सौ अंडे ही होते हैं तथा प्रत्येक अंडे के साथ पोषण द्रव्य की थैली भी होती है। जब अंडों से शिशु उत्पन्न होते हैं तो नर अपनी थैली की पेशी सिकोड़ कर एक-एक शिशु को एक छिद्र द्वारा बाहर करता है। इस क्रिया में ऐसा ज्ञात होता है मानो नर को कठिन प्रसव पीड़ा हो रही है। अपनी दुम को किसी पौधे के तने से आवद्ध रख कर वह अपने शरीर को आगे और पीछे की ओर तीव्र वेग से उस समय तक झुकाता रहता है जब तक कि थैली का मुख खुल नहीं जाता और एक शिशु बाहर नहीं निकल आता। नवजात शिशु माता-पिता के अनुरूप ही होते हैं। केवल उनका रङ्ग न्यून अपारदर्शी होता है और मुख सीधा और मोटा ही होता है।

नलिकामत्स्य भी विचित्र रूप का जल-जन्तु है। इसका आकार लम्बी नली-सा होता है। नर नलिकामत्स्य भी समुद्री अश्व की तरह ही मादा के स्थान पर अंडा सेने तथा शिशुपालन का भार अपने ऊपर लेता है। इसकी दुम समुद्री अश्व की तरह तो कोई वस्तु दृढ़ता से अपनी लपट में पकड़ सकने की यथेष्ट शक्ति नहीं रखती, फिर भी कुछ ग्रहण शक्ति रखती है जिससे शरीर को खड़े रूप में अवलम्ब प्राप्त होता है। यह समुद्री अश्व वंश का ही मत्स्य होता है। नर में उदर के नीचे दो चर्मीय पट्टियाँ थैली बना कर अंडों को आश्रय देती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नलिका मत्स्य की यह विशेषता है कि जिस रङ्ग के जलीय वनस्पति का आहार करता है उसके अनुरूप ही उसका रङ्ग परिवर्तित हो जाता है। यदि हरे समुद्री वनस्पति को आहार करने वाला नलिका मत्स्य लाल या भूरे समुद्री वनस्पति के मध्य बह कर पहुँच जाय तो उसका रङ्ग हरे की जगह लाल या भूरा बन जाता है। यह प्रकृति की देन उसे छिपने के लिए प्राप्त होती है। बड़े रूप के नलिका मत्स्य का आकार एक फुट से कुछ अधिक तक होता है, परन्तु अधिकांश नलिका मत्स्य इससे बहुत छोटे आकार के ही होते हैं।

इस लम्बोतरे आकार के मत्स्य का उल्लेख आज से सहस्रों वर्ष पूर्व अरस्तू द्वारा ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में पाया जाता है। अरस्तू के विचार में यह मत्स्य अपने उदर को चीर कर शिशु उत्पन्न करता था। उस युग में यह बात कल्पना में नहीं आ सकती थी कि नर मत्स्य भी किसी विचित्र रूप में जनन कार्य का प्रदर्शन-सा कर सकता है जिसमें उसकी चर्मीय प्रकृत्तिदत्त पट्टियों की थैली में नर केवल मादा की दी हुई थाती रूप के अंडों को सेता है और समय आने पर उसमें से नवजात शिशु बाहर होते हैं। अरस्तू ने भ्रमवश इसे उदर फट कर शिशु उत्पन्न होने की क्रिया समझा था और फिर उस विदीर्ण उदर चर्म का व्रण भर आने या अखंड बन जाने का अनुमान किया था।

एक अन्य जन्तु शल्य पृष्ठी (स्टिकल बैक) या त्रिशल्य मत्स्य होता है। त्रिशल्य मत्स्य तो बिल्कुल ठीक नाम नहीं कहा जा सकता क्योंकि स्टिकलबैक की कुछ जातियों के शरीर के पृष्ठ भाग पर तीन सींगें या काँटों रूप के उभाड़ अवश्य होते हैं, परन्तु अन्य उप-जातियों के इसी मत्स्य में तीन से अधिक शल्य भी होते हैं। किसी-किसी में दस-बारह शल्य तक निकले मिलते हैं। अतएव उन्हें इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्षण से बहु शल्य मत्स्य नाम देना पड़ सकता है। इन मत्स्यों की जातियाँ समुद्री (लवणीय) खारे जाल में भी पाई जाती हैं तथा नदी, तालाबों आदि के अलवणीय या मीठे जल में भी पाई जाती हैं। त्रिशल्य मत्स्य का प्रसार एशिया, यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है।

नर शल्यपृष्ठी मत्स्य का आकार अधिक से अधिक तीन इञ्च लम्बा होता है। इसकी सन्तान-पालन विधि अद्भुत होती है। यह वसन्त ऋतु में भव्य रक्त वर्ण धारण कर लेता है तथा सुलभ वनस्पतियों तथा कचरे से गोला घोंसला बनाता है।

इस घोंसले में आगे तथा पीछे की ओर छिद्र होते हैं जो बीच के गोल नलिकाकार कक्ष के द्वार होते हैं। घोंसले में प्रयुक्त नर्म घासों तथा तिनकों को यह मत्स्य कौशलपूर्वक अपने गुर्दे से निःसृत चिक्कन धागों से आबद्ध करता है। यह घोंसला कहीं वनस्पतियों या चट्टानों के सोतों के मध्य छिपा होता है जहाँ कुछ जल-प्रवाह भी रहता है। आंतरिक तल में एक समुद्री गोंद का लेप होता है। जो उसके शरीर से भी निकलता है। घोंसले के इस विवर में शल्यपृष्ठी मत्स्य (स्टिकल बैक) के आते-जाते रहने से उसके शरीर की रगड़ से प्रलेपित हो गया रहता है। जब एक घोंसला बन चुकता है तो नर शल्यपृष्ठी को उसके बसाने की चिंता होती है। इसके लिए वह अपने चटकीले रंग को अपनी जाति के किसी मादा को आकर्षित करने के लिए उसके सम्मुख रखता है। मादा मोहित होकर घोंसले में अंडा दे जाती है। मादा को नर अपने थूथन या शल्य से उत्तेजित भी करता रहता है। उन अंडों को नर तुरन्त ही सेचित कर देता है। परन्तु एक मादा के अंडों से ही वह सन्तुष्ट नहीं होता। दूसरी, तीसरी मादा को भी इसी प्रकार आकृष्ट कर उन्हें इस घोंसले में अंडा देने के लिए प्रवृत्त करता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब घोंसले में इस प्रकार यथेष्ट अण्डे उसके उद्यम से एकत्र हो जाते हैं तो अब अण्डों को सेने तथा रक्षा की बारी आती है। इस कार्य का भार नर पर ही होता है मादा तो अण्डे देकर ही पृथक् हो जाती है। नर अपने इस कर्तव्य का पूरी तरह पालन करता है। मादा ने अण्डा सेने तथा उससे उत्पन्न नवजात शिशुओं के पालन के उत्तरदायित्व को दूर फेंक दिया होता है। उसमें एक जननी की सहज सन्तान प्रेम नहीं बचा रहता। वह राक्षसी बन गई होती है और अवसर आते ही अण्डों या शिशुओं का भक्षण कर सकती है। इन राक्षसी माताओं तथा अन्य शत्रुओं से अण्डों तथा शिशुओं की रक्षा के कार्य में नर बड़ा सजग रहता है। वह मादाओं या अपने से दुगुने, तिगुने बड़े अन्य मत्स्यों को घोंसले के निकट आने का प्रयत्न करने पर अपना पराक्रम उनसे युद्ध कर भगाने में प्रदर्शित करता है। उसके जीते जी कोई भी उन अण्डों या शिशुओं का बाल बाँका नहीं कर सकता। नर अपने सन्तान रक्षण के कर्तव्य को एक सीमा से पार तक पूरा करता है। वह अंडों से शिशु उत्पन्न हो जाने पर भी अपनी संरक्षण वृत्ति नहीं छोड़ता और उन्हें बलात् घोंसले में ही बन्द रखता है। बाहर निकल आने पर उन्हें मुँह से पकड़ कर घोंसले में ही कर देता है। परन्तु जब शिशु उतने बड़े हो जाते हैं कि उनके घोंसले से बाहर निकल आने पर फिर घोंसले में वापस लाना नर शल्यपृष्ठी के लिए असंभव बात हो जाती है तो वे शिशु संसार-क्षेत्र में अपने बल पर प्रवेश करते हैं। उस समय पिता के संरक्षण की उन्हें आवश्यकता नहीं रह जाती।

शल्यपृष्ठी (स्टिकल बैक) झुण्डों में छोटी खाइयों, सोतों तथा नदी-तालाबों के उथले भाग में विशेषतया रहते हैं। वे बड़े शिकारी होते है। कीड़े-मकोड़े, मछलियों के अण्डों या नवजात शिशुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का आहार करते हैं। जंतु विज्ञान के विद्वानों का कथन है कि यदि ये जंतु बड़े आकार के होते तो जिन जलखंडों में इनका निवास होता वे जलखंड मगर से भरे जलखंडों से भी मनुष्य के लिए अधिक भयावह सिद्ध होते।

जलजंतुओं में अण्डों तथा नवजात शिशुओं के आश्रय के लिए हम शल्यपृष्ठी (स्टिकलबैक) के नर को जहाँ अपने शरीर से उत्पन्न एक विशेष गोंद का प्रयोग घोंसला बनाने में करते देखते हैं, वहाँ एक दूसरा जलजंतु घोंसला बनाने के लिए अद्भुत रूप से बुलबुलों का उपयोग करता है। चीन का स्वर्ग मत्स्य ऐसा ही जलजंतु है। नर स्वर्गमत्स्य जल के तल पर से मुँह में हवा भरकर पुनः उसे नीचे से अपने मुख में उत्पन्न एक विशेष प्रकार के चिपकन श्लेष्म के साथ मुख से ऊपर फेंकता है जो बुलबुला बनकर तल पर आ पहुँचता है। इसी तरह बुलबुलों से एक घोंसला-सा बना लेता है। जब बुलबुलों का घोंसला बन जाता है तो नर स्वर्गमत्स्य निकट दिखाई पड़ने वाली मादा को आकर्षित करता है। अनुनय विनय के पश्चात् मादा मुग्ध होकर उस घोंसले के नीचे अण्डे देती है। नर उन्हें तुरन्त सेचित कर देता है। अण्डे प्रायः पानी से हल्के होने के कारण उठकर उस घोंसले के तल में जा चिपकते हैं; परन्तु कुछ जाति के स्वर्गमत्स्यों में अण्डे पानी से भारी होने के कारण स्वयं ऊपर नहीं उठते। उन्हें नर उठा-उठाकर घोंसले में चिपका आता है। भारीपन के कारण उन्हें नीचे गिरने के पहले ही उठा-उठाकर घोंसले में चिपका देता है। हल्के अण्डों में भी जो अण्डे ठीक स्थान पर नहीं पहुँच पाते उन्हें नर मुख से पकड़कर ठीक स्थिति में रखता है। बाद में भी कभी कोई नवजात शिशु घोंसले से गिरता जान पड़ता है तो नर उसे पकड़कर फिर ठीक स्थान पर घोंसले में स्थित करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंडों से उत्पन्न होने पर नवजात शिशु कुछ समय तक बुलबुले के घोंसले में ही रहते हैं जिन्हें नर सँभालता रहता है। यथेष्ट बड़े होने पर अपना भार स्वयं ले सकने पर वे स्वतंत्र रूप में विचरण करते हैं। मादा शल्यपृष्ठी (स्टिकलबैक) की तरह मादा स्विगमत्स्य भी राक्षसी वृत्ति की होती है। नर को उसके शिशुओं की रक्षा करनी पड़ती है। उसकी गिनती शत्रुओं में ही करनी पड़ती है। यदि कभी शत्रु जलजंतु द्वारा नर भक्षण कर लिया जाय तो अंडों की रक्षा होनी असंभव बात ही हो जाती है।

जल के अंदर असंख्य अंडों का संहार होता है। मत्स्य न्याय एक लोकोक्ति ही नहीं, प्रत्युत नग्न सत्य है। इस कारण उनमें संतान की रक्षा के लिए विशेष चिंता भी पाई जाती है। लंपसकर या चिपकन पक्षीय मत्स्य की मादा अपने अण्डे चट्टानों या लट्ठों में चिपचिपी ढेरी की भाँति चिपका आती है। नर चिपकनपक्षीय मत्स्य उनको सेचित कर सेता तथा रक्षा करता है। मादा उन अंडों की तनिक भी चिंता नहीं करती। यह एक धैर्य की परीक्षा ही होती है जिनमें नर साठ या सत्तर दिन तक सहस्रों अंडों की पहरेदारी करते पड़ा रहता है। यदि उसकी रक्षा में पड़े अंडे ज्वार उतर जाने पर शुष्क तटीय भाग में हो जाते हैं तब भी वह उनकी रक्षा करता रहता है।

चिपकनपक्षीय मत्स्य तैरने में बहुत दुर्बल होते हैं। उनके स्कंधदेशीय मत्स्यपक्ष का रूप एक गोल चिपकन प्याली रूप में रहता है। अतएव वे उसे किसी चट्टान या लट्ठे से चिपकाकर पड़े रह सकते हैं। गति करने का कभी-कभी ही उन्हें अवसर होता है किंतु शिकार दिखाई पड़ने पर उस पर तीव्र वेग से आक्रमण करने की स्फूर्ति उनमें अवश्य होती है, किंतु वयस्क चिपकनपक्षीय मत्स्य की भाँति अल्पवय चिपकनपक्षीय सुस्त नहीं होते। वे बड़े क्रियाशील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
होते हैं। केवल विश्राम करने पर ही अपने चिपकनपत्त का वे प्रयोग करते हैं।

मादा को आकर्षित करने के लिए प्रणय-लीला के समय नर चिपकनपत्तीय मत्स्य का रंग चटकीला लाल होता है। किंतु अंडों के उत्पन्न होने पर सेचन क्रिया हो जाने के पश्चात नर का आकर्षक लाल रंग लुप्त हो गया होता है। वह समय सौन्दर्य प्रदर्शन तथा आकर्षण का नहीं रह जाता बल्कि शौर्यपूर्वक अंडों की रक्षा करते रहने का होता है। इस कारण आकर्षक लाल रंग मिट जाता है।

नवनीत मत्स्य केवल दस इंच लम्बे आकार का होता है। उसकी संतान-रक्षा विधि विचित्र ही है। इसके नर मादा दोनों ही कोई आश्रय ढूँढ़ते हैं जहाँ अण्डे रखे जायँ। नर और मादा दोनों ही मिलकर सब अण्डों को एकत्र कर एक गेंदे रूप में बना लेते हैं और फिर उसे किसी छेद या खोखले प्रकवच में रखते हैं। प्राय: नर ही अण्डों के चारों ओर अपना शरीर लपेट कर प्रहरी की भाँति पड़ा रहता है। किसी सीप या घोंघे के खाली प्रकवच में नर नवनीत मत्स्य अंडों को इस प्रकार लपेटे हुए पड़ा पाया जा सकता है।

मछलियों के अतिरिक्त अन्य जतुओं के नरों में भी संतान प्रेम तथा पोषण के अद्भुत उदाहरण पाये जा सकते हैं। मेढकों की कुछ जातियों में इसके विशेष उदाहरण पाये जाते हैं। दक्षिण अमेरिका के चाइल प्रदेश में चार्ल्स डारविन ने एक विचित्र मेढक को देखा था जिसके नर में अद्भुत संतान-पालन के उदाहरण मिलते हैं। यह डारविन के नाम पर ही प्रसिद्ध है। नर डारविन मंडूक में दो वाह्य थैलियाँ होती हैं जो शब्द की मात्रा वृद्धि करने के लिए होती हैं। वे मुख के अन्दर जीभ के दोनों ओर द्वार रखती हैं। यह ठीक तरह तो ज्ञात नहीं होता कि अंडे ठीक स्थल पर किस प्रकार पहुँचते हैं, परन्तु विद्वानों का यह अनुमान है कि संतानोत्पादन ऋतु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में संचित किये अंडों को दस-पन्द्रह की संख्या में नर मंडूक मुख में ले लेता है और थैलियों में रख देता है। अंडों के साथ पोषण थैली भी होती है। अतएव वे शीघ्र विकसित होने लगते हैं। उनको अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। उसके लिए पहले तो मुख की थैली ही फैलने लगती है, जो पहले कंठ के नीचे तथा बाद में पार्श्व भाग में बढ़ती है। धीरे-धीरे वह मेढक के सम्पूर्ण अधोतल में फैल जाती है। इस थैली में केवल अण्डे से शिशु ही नहीं उत्पन्न होता, बल्कि शिशु के शरीर का भी विकास होता रहता है। वे विकसित शिशु ऐसे सुरक्षित रूप में रह कर बड़े होने पर एक-एक कर नर के मुख के मार्ग से बाहर निकलते हैं। उस समय वे पूर्णत: अपने माता-पिता के अनुरूप ही होते हैं। यह संतान-रक्षा तथा पोषण का कैसा विचित्र प्राकृतिक विधान मेढक को प्राप्त है।

संतान-पालक नर मंडूक का एक उदाहरण यूरोप में पाया जाता है। इस जाति के मंडूक की मादा भूमि पर दो लम्बी मालाओं रूप में अंडे देती है। नर उनके बीच अपने पिछले पैरों को डाल कर करधनी-सा बना लेता है और किसी गड्ढे में जा बैठता है। रात को वह चारा की खोज तथा अंडों को आर्द्रता प्रदान करने के लिए बाहर आता है। कभी-कभी अंडों को जल के निकट ले

सन्तानपालक मेढक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाकर उन्हें जल-सिंचित कर लेता है। तीन सप्ताह तक सेवा-सुश्रूषा करने के पश्चात् जब अंडों से शिशु उत्पन्न होने का ठीक समय आ पहुँचता है तो वह उन्हें लेकर निकट के जलाशयों में चला आता है। पानी के संसर्ग से अंडों का आवरण नर्म पड़ जाता है और शिशु उससे बाहर निकल आते हैं।

पक्षियों में यह एक बहुत प्रचलित परिपाटी है कि नर का रूप यदि मादा से भिन्न होता है तो उसमें रंग की भव्यता तथा चटकीलापन पाया जाता है, किन्तु अमेरिका में एक ऐसा पक्षी होता है जिसमें उल्टी गंगा ही बहती है। नर की अपेक्षा मादा का ही रंग अधिक भड़कीला होता है। मादा का आकार भी नर से बड़ा होता है। यह स्वाभाविक है कि स्त्री को अपने सौन्दर्य का अभिमान है तो घर-बार सँभालने का भार बेचारे पति पर ही पड़ेगा। यही अवस्था अमेरिका की चर्मपाद प्रजाति के पक्षियों का है। इन पक्षियों में पैरों में प्रत्येक उँगली में पृथक्-पृथक् उँगली-जाल होते हैं। अतएव उनसे तैरने में भी सहायता मिलती है और भूमि पर चलने में भी। ये पक्षी पानी पर तैरने में कुशल होते हैं। अतएव इन्हें जलप्रिय जाति कहते हैं। मादा जलप्रिय पक्षी को अंडा दे चुकने के बाद संतान की चिन्ता से सर्वथा मुक्त पाया जाता है। अंडों को सेने तथा शिशु-पालन का सारा बोझ नर पर पड़ता है। यही नहीं, अंडा देने के पूर्व प्रणय-लीला में भी मादा को अग्रसर पाया जाता है। वह बेचारे नर को आकर्षित करने के लिए अपने शारीरिक सौन्दर्य का प्रदर्शन करती है। गर्दन फैला-फैलाकर नाना प्रकार की ध्वनियाँ करते रह कर नर को मुग्ध करने का प्रयास करती है किन्तु अंडा देते ही चम्पत हो जाती है। उसका सौन्दर्य भी लुप्त हो जाता है। मादा संतान-पालन के शेष सभी कार्य करती है। यह पक्षी अमेरिका के प्रदेशों में पाया जाता है। शीतकाल में चाइल के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण तथा पेटेगोनिया में रहता है तथा ग्रीष्म में मध्य कैलिफोर्निया में रहता है।

लाव वंश की बीसों जातियाँ होती हैं जो यूरोप, अफ्रीका, मडागास्कर, दक्षिण एशिया, पूर्वी द्वीप समूह तथा आस्ट्रेलिया में पाई जाती हैं। ये जातियाँ घास के मैदानों में ही रहती हैं। इनमें मादा का ही रूप सुन्दर तथा बड़ा होता है। वही नर को आकृष्ट करने के लिए अग्रसर होती है। अण्डा देने के बाद मादा संतान की चिन्ता से मुक्त हो जाती है और बेचारा नर ही सब कुछ करता है। अपेक्षाकृत छोटे नर के लिए कई मादा परस्पर संघर्ष भी करती हैं। इनकी लड़ाकू वृत्ति के कारण मादा को लोग लड़ाने का दृश्य देखने के लिए पालते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंतुओं में सहजीविता तथा परोपजीवीपन

जंतुओं को एकाकी जीवन व्यतीत करते कम ही पाया जाता है। विकट जीवन संघर्ष में जीवित रह सकने के लिए उन्हें कुछ न कुछ दूसरों का साथ पकड़ कर चलना पड़ता है किन्तु कुछ जंतु तो ऐसे पाये जाते हैं जो विचित्र रूप से एक दूसरे से अटूट सहयोग कर लेते हैं या दूसरे जंतु के परोपजीवी बन जाते हैं। ऐसे जंतुओं की कहानी थोड़ी नहीं है। ऐसी सहजीविता तथा परोपजीवीपन की विलक्षणता भी न्यून नहीं है। ऐसे सम्बन्ध सूत्रों में जब दो बिल्कुल ही विभिन्न रूप के जंतु बँध जाते हैं तब तो उसकी विचित्रता और भी बढ़ जाती है। ऐसे सम्बन्धों में सहजीविता तो ऐसे रूप के सम्बन्ध सूत्र को कहेंगे जिसे दोनों सम्बद्ध जंतुओं को एक दूसरे से यथेष्ट लाभ पहुँचता है। परन्तु परोपजीवीपन का सम्बन्ध तो एक जंतु दूसरे के शरीर का अंश या अर्जित आहार ही हड़प कर जाने के लिए करता है। वह अपने आश्रयदाता जंतु का हित नहीं करता। अतएव इन दोनों प्रकार के सम्बन्ध में एक को परस्पर लाभकारी सहयोग कहेंगे और दूसरे को एकपक्षीय लाभकारी या दूसरे शब्दों में हरामखोरी का साथ ही कहेंगे।

पक्षियों को पशुओं का साथ पकड़े देखा जाता है। बुफेग या रिनोसेरो पक्षी अनेक वन्य या पालतू बड़े जन्तुओं से सहयोग करने के लिए प्रसिद्ध हैं जिसमें दोनों पक्ष को लाभ होता है। कुछ जाति के जन्तु से सहयोग कर ये पक्षी उसके शरीर पर चिपके परोपजीवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीटों को खा जाते हैं। कुडूगाय कदाचित् इस सहजीविता के सूत्र में आबद्ध पक्षियों का उपकार हृदय में मानती है। इसी कारण वह शरीर पर इनके बैठने पर तनिक भी नहीं भड़कती, बल्कि उनका शान्त रूप से स्वागत ही करती है। परिणाम यह होता है कि कुडू गाय को पीड़ा पहुँचाने वाले या शरीर का रक्त चूसने वाले कीटों का विनाश होता है। कुडू गाय के जीवन में हम एक ओर तो रिनोसेरो पक्षियों से सहजीविता का सम्बन्ध रखते देखते हैं, दूसरी ओर कुछ कीट अहितकर साथ कर परोपजीवीपन वृत्ति के कारण उसका रक्त चूसते हैं। पशु होने पर भी कुडू गाय में इतनी भावना तो अवश्य होगी कि उसके सभी अंगों पर निर्भर रूप से फुदक-फुदक कर बैठते रहने वाले पक्षी उसके दूसरे आततायी निकटस्थ परोपजीवी जंतुओं का नाशकर उसका हित ही कर रहे हैं। यही कारण होगा कि वह कभी इन पक्षियों को अपने शरीर पर से उड़ा भगाने का तनिक भी उद्योग नहीं करती।

इस दृश्य का छोटा-मोटा उदाहरण हम अपने ढोरों में भी देख सकते हैं जिनके शरीर पर बैठकर कौए परोपजीवी कीटों को खा जाते हैं। अतएव कौओं के शरीर पर बैठने से ढोर उत्तेजित नहीं जान पड़ते। किन्तु रेनोसेरो पक्षी को अपने सहजीवी सम्बन्ध सूत्र में बँधे जन्तु का उपकार करने का एक ज्वलन्त उदाहरण भी पाया जाता है। जब कभी किसी विपत्ति की आशंका हो तो ये पक्षी आकाश से ही उसका अवलोकन कर विपत्ति की सूचना अपने आश्रयदाता चौपाए को देने के लिए ऊपर उड़कर बड़े अशान्त होकर उच्च तथा कान फाड़ने वाले शब्द उत्पन्न कर मँडराने लगते हैं। यह सहजीविता की भावना आश्रयदाता कुडू गाय के लिए कितनी हितकारी है, परन्तु बेचारे परोपजीवी जन्तुओं को अवश्य ही घोर नाशकारी ही प्रतीत होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोबलाका या गाय-बंगला ढोरों या भैंसों के साथ ऐसा ही सहजीविता का कल्याणकारी सहयोग कर दिखाता है। गाय-बगलों को ढोरों के झुण्ड के साथ उच्च स्वर करते चलते देखा जा सकता है। ढोर इनका स्वागत-सा करते हैं। ये उनके शरीर पर बैठकर परोपजीवी कीटों को खा जाते हैं परन्तु एक और भी लाभ का मार्ग गोबलाका स्वयं निकाल लेता है। ढोरों के चलने-फिरने से घास के रौंदे जाने से भूमि पर के कीट कुछ स्थान बदलने या अपनी रक्षा की चिन्ता में कुछ गति करते हैं, अतएव ढोरों के चलने से उनकी उपस्थिति जानकर गोबलाका उन जन्तुओं को सहज आहार बना लेते हैं। सिलेबीज द्वीप में भैंसों के साथ गोबलाकाओं का सहयोग चरवाहों को एक शुभकार्य प्रतीत होता है। हमारे देश में भी सहयोगिता का उदाहरण गोबलाका उपस्थित करता है। अफ्रीका में क्षुद्र गोबलाका गेंडों तथा दरियाई घोड़ों के शरीर पर बैठने में तनिक भी नहीं हिचकता। वह इन जन्तुओं के अंगों में परोपजीवी कीटों को ढूँढ़-ढूँढ़कर भक्षण कर जाता है।

चूहे द्वारा शेर की रक्षा होने की कथा हम बच्चों की पुस्तकों में पढ़ते हैं परन्तु यथार्थ जीवन क्षेत्र में भी छोटे जन्तुओं द्वारा बड़े जन्तुओं की रक्षा के उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। ऐसा कल्याणकारी सहयोगी मेक्सिको की एक काली चिड़िया तथा बर्रों में पाया जाता है। ओरो पेंडोला नाम के ये पक्षी उष्ण देशों में शाखा से लटकाकर छः फुट लम्बे भव्य घोंसले बनाते हैं। इनके अंडों की चाह अनेक वृक्षचारी जन्तुओं, बंदरों, ओपोसम वृक्षारोही सरीसृपों आदि को होती है। ये प्रबल शत्रु होते हैं और घोंसलों से अंडे लूट खाने में बड़े दक्ष होते हैं। इन शत्रुओं का निवास वृक्षों में ही होता है अतएव घोंसलों से अंडे छीन-झपट लेना इनके लिए बड़ी बात नहीं होती। ऊँची से ऊँची डालों तक उनकी पहुँच होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी विपत्तियों से रक्षा पाने का एक मार्ग ओरोपेंडोला पक्षी को प्राप्त होता है। वह अपना घोंसला ऐसी डालों में ही बनाता है जिस पर बर्रे के भी बड़े उपनिवेश होते हैं। बर्रों को इन पक्षियों के क्रिया-कलाप से कोई बाधा नहीं पहुँचती, किन्तु कोई अन्य आगंतुक वृक्ष पर पहुँचता है तो बर्रे का झुंड उत्तेजित हो उठता है। बर्रे समान तीव्र डंक के जन्तुओं की उत्तेजित मंडली में कोई भी जन्तु जाने का कभी साहस नहीं कर सकता। साहसी तथा भूख से तड़पता शत्रु भी ऐसी स्थिति में उस डाल पर जाने का प्रयत्न नहीं कर सकता। ओरोपेंडोला इसका विशेष ध्यान रखता है कि बर्रे का छत्ता उसके घोंसले तथा वृक्ष के तने के मध्य ही रहे। इस प्रकार बर्रों के छत्तों द्वारा ओरोपेंडोला अपने घोंसलों में अंडों तथा शिशुओं की रक्षा कर सकने में समर्थ होता है। यह सह-जीविता उन पक्षियों के जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है!

सहजीविता के उदाहरण के लिए भूमि या वृक्ष का क्षेत्र ही सीमित नहीं कहा जा सकता। जलखंड में भी इसका मनोरंजक उदाहरण पाया जा सकता है। समुद्र में अनेक क्षुद्र जीव अपनी रक्षा का आश्रय बड़े जन्तुओं के शरीर में पाते हैं। यह सुनने में कितने आश्चर्य की बात ज्ञात होती है। ईल की तरह नली के नमूने की एक मछली अपना आश्रय समुद्री ककटी (सी कुकुम्बर) नाम के जन्तु के शरीर में प्राप्त करती है। इस मछली को चटक (फियरेस्फर) मत्स्य कह सकते हैं। इसका शरीर काँच सदृश्य पारदर्शक चमकीला होता है। केवल जहाँ-तहाँ बुँदकियाँ होती हैं। यह मत्स्य पहले समुद्री ककटी जन्तु का पिछला भाग ढूँढ़ता है। उसके साथ वह अपने सिर द्वारा चिपक जाता है। फिर अपने शरीर को मोड़ कर छिद्र में अपनी पूँछ कर देता है। अब फिर अपना शरीर सीधा कर लेता है और धीरे-धीरे अपना शरीर पीछे खिसकाने लगता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिससे उसका शरीर अच्छी तरह समुद्री ककटी जन्तु के शरीर में प्रविष्ट कर जाता है। कदाचित् समुद्री ककटी की श्वास नलिका से जो श्वास निकलती है, उससे इस मत्स्य को उसके शरीर में प्रविष्ट करने की सुविधा प्राप्त होती है।

समुद्री ककटी की श्वास-प्रणाली तथा आँत का अंत द्वार मल-द्वार होता है। इस मलद्वार से ही चटक मत्स्य प्रवेश करता है। परन्तु एक ही समय अनेक चटक मत्स्य एक ही जन्तु के शरीर में जीवित रूप में आश्रय पाये हो सकते हैं। एक जन्तु के शरीर में तो सात चटक मत्स्यों को एक दूसरे के पश्चात एकत्र आश्रय प्राप्त करते देखा गया था।

दिन के समय चटक मत्स्य समुद्री ककटी के शरीर के अन्दर छिपे पड़े रहते हैं। परन्तु रात को वे केकड़े सरीखे कड़ी खाल के आवृत जन्तुओं के शिकार में निकल पड़ते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे सहयोग में समुद्री ककटी को आश्रय प्रदान करने का कोई प्रतिफल चटक मत्स्यों द्वारा नहीं प्राप्त होता, किन्तु यह कृत्रिम जलजन्तुशालाओं में निरीक्षण कर देखा गया है कि समुद्री ककटी (होलोथूरियन) को अपने शरीर में आश्रय प्राप्त करने वाले चटक मत्स्यों (फियरेस्फर) के कारण क्षुब्धता का अनुभव नहीं होता। भय-ग्रस्त या क्षुब्ध होने पर जन्तु अपने आंतरिक पदार्थ बाहर निःस्सृत करते हैं, परंतु समुद्री ककटी में चटक मत्स्यों के प्रवेश करने से ऐसी कोई क्षोभकारी भावना नहीं प्रकट होती।

योगी केकड़े की कहानी बहुत ही प्रसिद्ध है। यह उधार घर लेकर प्रायः आश्रय प्राप्त करने का दृश्य उपस्थित करता है। घोंघों के प्रकवच में इसे सहज आश्रय प्राप्त होता है। एक आलपीन की नोक बराबर प्रकवच से लेकर अंगूर के गुच्छे समान बड़े आकार तक के प्रकवच इसे केकड़े द्वारा प्रयुक्त होते हैं। इस क्रिया के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगी-केकड़े की एक विशेषता प्रेरित करती है। उसके शरीर पर रक्षा का कुछ प्रवन्ध तो होता है, परन्तु वह अधूरा होता है। उसके सामने के वाहुवत, पाश-सूत्र, चंगुल, पैर तथा शरीर के अगले और मध्यवर्ती भाग एक शृङ्गीय आवरण से वेष्ठित होते हैं, किन्तु शेष भाग कोमल तथा अरक्षित ही रहता है। अपने इस रूप के अरक्षित भाग की रक्षा की चिन्ता में ही योगी केकड़ा अन्य जंतुओं के खोखले प्रकवच अपने प्रयोग में लाता है। उसमें अपना उदर प्रविष्ट कर देता है और उसे फिर स्वयं ही वड़ी सुगमता से वाहर निकाल सकता है।

जैसे-जैसे योगी केकड़े के शरीर की वृद्धि होती जाती है, एक प्रकवच त्यक्त कर दूसरे दीर्घतर प्रकवच को ग्रहण करना पड़ता है। प्रौढ़ हो जाने तक वह प्राय: प्रकवचों को वदलता ही रहता है। अपनी इस आवश्यकता के लिए योगी-केकड़ा जब अनेक खोखले प्रकवचों की परीक्षा करता है तो वह दृश्य देखने योग्य होता है। उपयुक्त प्रकवच पाकर यह अपना शरीर पुराने प्रकवच से वाहर कर लेता है और कहीं से कोई विपत्ति आ जाने की अशंका से वहुत ही तीव्रता से नये प्रकवच में स्थान ग्रहण करता है।

योगी-केकड़ा केवल प्रकवच में ही अपना शरीर प्रविष्ट कर सन्तुष्ट नहीं होता। ऐसा हो सकता है कि कोई प्रवल समुद्री शत्रु उसको तथा प्रकवच को साथ ही विध्वंस कर दे। अतएव वह अपनी रक्षा में सहायक रूप का अन्य उपाय भी कर लेता है। एक जन्तु समुद्री कुसुमाभ होता है जो एक स्थान पर फूल-सा जमा दिखाई पड़कर अपनी पंखुड़ियों रूप की वहुसंख्यक भुजाओं या अस्त्रों से निकट आने वाले जन्तु पर आक्रमण कर सकता है। उनकी सहायता से जन्तुओं को वह अपने मध्यवर्ती मुख में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी डाल लेता है। यह पुष्प रूप में दिखाई पड़ने वाला पदार्थ जन्तु ही होता है जिसका विचित्र रूप होने से ही कुसुमाभ (सी-

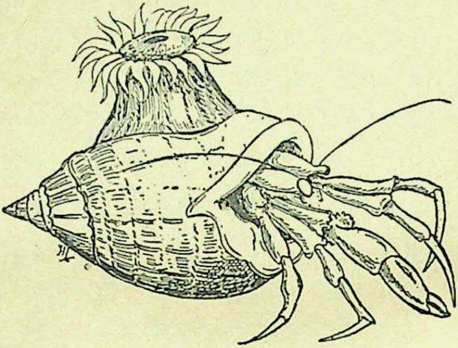

योगी केकड़ा

एनीमोनी) नाम पड़ा है। कुसुमाभ मन्दगति से रेंग सकता है, किन्तु वह बहुत मन्दगति या अचल रूप का ही कहा जा सकता है। उसे अपने आश्रय रूप के प्रकवच पर स्थान देकर योगी-केकड़ा आहार के लिए भ्रमण भी कराता है तथा अपनी रक्षा भी करा सकता है। यह बाह्य रूप से ही सह-जीविता का उत्तम उदाहरण है।

योगी-केकड़ा अपने बढ़ते शरीर के उपयुक्त दूसरा प्रकवच ढूँढ़ लेने पर कुसुमाभ को पुराने प्रकवच से इस नये प्रकवच पर बैठा लेने का ध्यान रखता है। यही नहीं, एक प्रकवच पर कई कुसुमाभों को बैठाने का भी प्रबंध पाया जाता है। साथ ही नलिकांगी मत्स्य (बारनेकल) भी अपना शरीर इस व्यूह रचना के प्रकवच में चिपकाये रखकर योगी-केकड़ा के उच्छिष्ट पदार्थों से अपना निर्वाह कर लेता है। परन्तु अपने सहजीवी जन्तु के इस उपकार का किसी प्रकार बदला चुकाने का कभी नलिकांगी मत्स्य को ध्यान नहीं रहता। निश्शुल्क ही सहायता प्राप्त करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक छोटी मछली का किसी विकट शिकारी मछ्ली से साथ एक आश्चर्य की बात हो सकती है। परन्तु ऐसा सह[illegible] रेमोरा मत्स्य तथा अनस्थिक मत्स्य (शार्क या सूँस) में पाया [illegible] है।

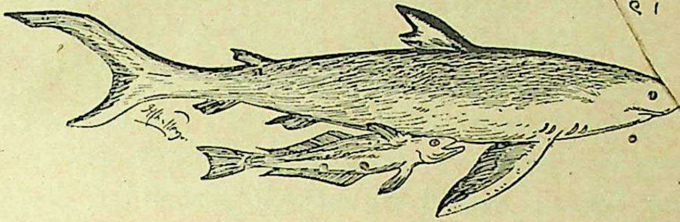

चिपकन मछली (रेमोरा)

रेमोरा को चिपकन मछली भी कहा जाता है, क्योंकि वह माथे तथा स्कंध पर चिपकन प्याली रखती है जिसकी सहायता से वृहद्-काय अनस्थिक मत्स्य (सूंस) से जा चिपकती है। रेमोरा अपनी चिपकन प्याली द्वारा किसी भी वस्तु से चिपकी रह सकती है। वह आहार की खोज में भ्रमण करने के लिए प्राय: अनस्थिक मत्स्य के शरीर से चिपक जाती है। यह कृत्य केवल उसकी रक्षा में ही सहायक नहीं होता, प्रत्युत

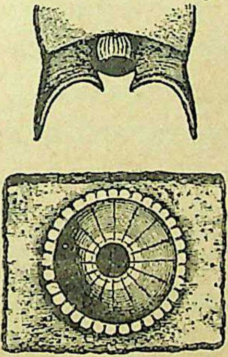

चूषक (चिपकन) प्याली

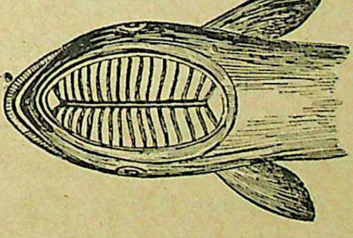

चूषक प्यालीयुक्त सिर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनायास आहार

वह दूर-दूर की यात्रा भी कर आती है और नये-नये ...ां में पहुँच कर सहज यथेष्ट आहार प्राप्त कर लेती है। कहीं ...टी मछलियों का भारी दल देखते ही वह अनस्थिक मत्स्य ...रीर छोड़ देती है। जब उदरपूर्ति कर लेती है तो अपने ...कने के लिए कोई नया आश्रय ढूँढ़ लेती है। रेमोरा मछली को अनस्थिक मत्स्य बड़ी दूर के स्थानों की यात्रा करा लेते हैं किन्तु उनको स्वयं रेमोरा से कोई लाभ नहीं होता। उस आश्रयप्राप्त मछली को वे खा भी नहीं सकते क्योंकि वह उसके मुख की पहुँच से दूर किसी स्थल पर उसके अंग से चिपकी पड़ी रहती है।

रेमोरा मछली की चिपकन शक्ति कल्पनातीत ही होती है। वह अपनी चिपकन प्याली में इतना वायुशून्य स्थल (वैकुअम) पैदा कर सकती है कि केवल तीन पाव तोल की चिपकी हुई रेमोरा के शरीर द्वारा तीस बत्तीस सेर तोल के कच्छप को लटका कर उठाया जा सका है। रेमोरा द्वारा कच्छपों तथा अन्य समुद्री जन्तुओं के शिकार करने की विचित्र युक्ति की जाती है। कोलम्बस ने रेमोरा मछली द्वारा कच्छपों तथा समुद्री जन्तुओं के शिकार करने का दृश्य पश्चिमी द्वीप समूहों में देखा था। ऐसी विधि को आज भी अनेक देशों के मूलवासी प्रयुक्त करते हैं। एक वैज्ञानिक ने उल्लेख किया है कि मूलवासी रेमोरा की पूंछ में रस्सी बाँधकर उथले पानी में डाले रखते हैं। जब कच्छप के शिकार का समय आता है तो उसकी पूँछ के आधार स्थान पर एक छेद कर दिया जाता है और उसमें दृढ़ अस्थि का कोई टुकड़ा पहना कर लंबी रस्सी से बाँध दिया जाता है। मुँह तथा गलफड़े होकर भी एक रस्सी बाँधी जाती है। अब इसे नाव पर से नीचे लटका रखा जाता है। कोई कच्छप दिखाई पड़ते ही रेमोरा के मुख और गलफड़े के मध्य फँसी रस्सी को निकाल लिया जाता है और उसे पानी में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाने दिया जाता है। शिकार कितना भी भारी हो, उसे रेमोरा की चिपकन प्याली नहीं छोड़ सकती। केवल उसकी ... से बँधी रस्सी टूट जाने या रेमोरा का शरीर ही कटकर अलग हो...ने पर ही उसकी चिपकन प्याली से चिपके शिकार के हाथ से निकल...ने की अशंका हो सकती है। आस्ट्रेलिया के मूँगे की भीत के ... मूलवासी ऐसा शिकार करते हैं, परन्तु शिकार का खेल समाप्त हो... पर रेमोरा को भी वे आहार बना लेते हैं।

जन्तुओं में नर और मादा के आकारों में कुछ भेद पाया जा सकता है, परन्तु मछली पकड़ने की बंशी समान प्राकृतिक रूप की कोई सूत्रबद्ध चारा-सा अंग रखने वाली एक मछली होती है जिसे वंशीधारी मछली कहते हैं। उसके नर का आकार मादा का दसमांश ही होता है। इन जन्तुओं में यह विचित्र दृश्य देखा जाता है कि जल में घूम-फिर कर शिकार करने वाली तो मादा वंशीधारी मछली ही होती है और नर उनके शरीर से चिपका पड़ा रहता है। ये मछलियाँ गहरे समुद्र के घोर अंधकार में रहती हैं और मंद गति से भ्रमण करती रहती हैं। इनका आहार मांस होता है। वयस्क नर को मादा प्राप्त कर सकना कठिन कार्य हो सकता है अतएव उस विचित्र क्षेत्र के जीवन संघर्ष में अन्य दुर्धर्ष जल-जन्तुओं द्वारा भक्षण कर लिये जाने से अल्प संख्या होने के पूर्व ही बेचारा नर अपने जीवन की समस्या हल करने के लिए इल्ली अवस्था से ही चिन्तित जान पड़ता है। वह उसी अवस्था में इधर-उधर भटकता कोई मादा ढूँढ़ लेने का प्रयास करता है। कोई मादा मिल जाने पर उसके शरीर से चिपक जाने का अधिक अवसर रहता है। पहले नर मुख से पकड़े रहता है, फिर ओंठ तथा जीभ मादा की त्वचा से ही संयुक्त हो जाती है। इस प्रकार नर मादा एक जन्तु बन जाते हैं और नर मादा के एक आश्रित अंग-सा बन जाता है। मादा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रक्तप्रणाली में ही नर का पोषण होने लगता है। यह सहजीविता आजीवन रहती है। जब मादा मर जाती है तो नर की भी उसी के साथ मृत्यु हो जाती है। नर का मादा से चिपकने का स्थान अनियमित होता है। एक ही मादा से कई नर भी चिपके हो सकते हैं। मादा का आकार चालीस इंच लम्बा होता है, परंतु नर का आकार केवल चार इंच होता है जो उसके अन्दर से चिपका होता है।

समान जाति के जन्तु से सहयोग के स्थान पर निम्नवर्ग के जन्तु से सहजीविता के भी उदाहरण जलजन्तुओं में पाये जाते हैं। एक मछली शंबुक के साथ सहजीविता का विचित्र प्रवन्ध करती है। मादा मछली अपने अंडों को एक लम्बी थैली में रखने की व्यवस्था रखती है। उस थैली को वह बड़ी सावधानी से शंबुक के प्रकवच के अंदर डाल देती है। नर मछली उन अंडों को शंबुक के प्रकवच में ही सेचित कर देता है। यह स्थल अंडों के लिए यथेष्ट सुरक्षित होता है और शत्रुओं से बचे रहकर शिशुओं के जन्म का अवसर होता है। जब शिशु उत्पन्न हो जाते हैं तो वे स्वतः शंबुक के प्रकवच से बाहर निकल आते हैं। एक मास तक शंबुक के प्रकवच में अंडे पड़े रहने पर शिशुओं की उत्पत्ति होती है। शंबुक के श्वास लेने से जल की जो लहर पैदा होती है, उससे प्रकवच के अन्दर के अंडे जलसिंचित होते रहते हैं। इस प्रकार विचित्र रूप से इन मछलियों की सुरक्षित रूप में उत्पत्ति हो पाती है।

शंबुक या द्विपुटी कोमलांगी जंतु के लिए ऐसे सहयोग से कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं प्रतीत होता किंतु इस सीप या शंबुक के शिशु उत्पन्न होने पर प्रतिफल पाने का कुछ अवसर होता है। प्रकवच से बाहर निकलने वाले क्षुद्र शंबुक अपनी लम्बी चिपकन झिल्ली द्वारा किसी निकट जाती मछली के चिपकन से चिपक जाते हैं और उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर अपने दोहरे पटों के प्रकवच का अतिरिक्त बन्धन डाल देते हैं। यथेष्ट वयस्क होने तक शंबुक उसी अवस्था में चिपके पड़े रहते हैं और शक्तिशाली हो जाने पर समुद्र के पेटे में जीवनयापन कर आने पर ही उस आश्रय को छोड़ते हैं। यह देखा गया है कि नव-जात शंबुक प्राय: उसी मत्स्य से चिपका करते हैं जिनके अंडे उनके जनक शंबुकों के प्रकवच में पलते हैं। यह माता-पिता के उपकार रूपी ऋण का इन मत्स्यों से प्रतिफल प्राप्त करने का एक सुन्दर दृश्य-सा कहा जा सकता है। परस्पर सहयोग का भी अच्छा उदाहरण है।

जंतु-जगत में सहजीवीपन का एक विलक्षण उदाहरण चींटे तथा तितली के मध्य पाया जाता है जिसकी कोई सम्भावना ज्ञात नहीं हो सकती। वृहद् नील तितली एक गुलाबी-सी क्षुद्र इल्ली के रूप से अपना जीवन प्रारम्भ करती है। वन्य पुष्पकलिकाओं को आहार बनाती है। तीसरी बार केंचुल गिराने या कायापलट के पश्चात् इसके शरीर के छोर पर मृदु रस उत्पन्न करने वाली ग्रन्थि से आकृष्ट होकर एक चींटा उसे थपथपा कर मधु रस निचोड़ता है। कदाचित् इल्ली इस क्रिया से हर्षित-सी होकर अपने शरीर के अग्र भाग को फुला लेती है मानो वह कह रही हो कि हमें उठा ले चलो। ऐसा होने पर मधुरस का पिपासु चींटा इस रस प्रदा-यिनी-सी क्षुद्र कामधेनु को अपने मुख में पकड़ कर उठा ले चलता है और लम्बी यात्रा कर भी अपने घोंसले में पहुँचता है। इस क्षुद्र कामधेनु रूप की इल्ली के आगमन से चींटे के घोंसले में कोई भी बावेला खड़ा नहीं होता। अपनी ग्रन्थि से तो एक ओर वह मधु-रस प्रदान करती जाती है, किंतु दूसरी ओर उस मधु-रस का मूल्य-सा प्राप्त करने के लिए चींटों की संतान को खाती जाती है। शीत-ऋतु के दीर्घ शयनकाल के पश्चात् ग्रीष्म में इल्ली कायापलट करती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है तथा लम्बी बिल नलिका को पार कर पङ्खदार तितली रूप में बाहर आकर उड़ने लगती है। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने २० वर्षों के पर्यवेक्षण के पश्चात् तितली की इल्ली तथा चींटे की इस सहजीविता का स्पष्ट रहस्योद्घाटन किया जो दोनों के लिए पारस्परिक लाभ की बात होती है।

अनेक तितलियों तथा भुनगों की इल्लियों तथा अल्पवय शिशुओं पर परोपजीवी कीटों का आक्रमण होता है। ये परोपजीवी कीट सहस्रों प्रकार के होते हैं तथा अपने आश्रयदाताओं का संहार करते हैं। इन विलक्षण कीटों के मुख्यता दो वर्ग होते हैं। एक वर्ग तो मधुमक्खी, बर्रे, चींटे आदि है। दूसरे वर्ग में द्विपंखी मक्खियाँ होती हैं। इन परोपजीवी कीटों के आश्रयदाता सदा दूसरे कीट होते हैं जिनकी अंडे से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की किसी न किसी अवस्था में वे परोपजीवी कीट आ बसते हैं।

पहले वर्ग के परोपजीवी कीटों में हम अपने आश्रयदाता कीट के ढूँढ़ लेने की ऐसी विचित्र भावना देखते हैं तथा आश्रयदाता को ध्वस्त कर देने का ऐसा उदाहरण पाते हैं कि मनुष्य उनकी जीवन कथा का पता लगा कर एक विलक्षण कल्याणकारी जीव-जगत अपने सम्मुख पाता है। वे आश्रयदाता कीट हमारे उपयोग के वनस्पतियों का संहार करते हैं। उनकी संहार लीला को समाप्त करने का कोई उपयुक्त साधन ढूँढ़ सकने में कदाचित् कुछ कठिनाई ही हो, परन्तु परोपजीवी कीटों का दल बराबर उनके शरीर पर बैठ कर अपना सहज जीवन कार्य चलाने के प्रयत्न में इन वनस्पति नाशी कीटों को निर्मूल कर देता है। हमारे किसी आमन्त्रण के बिना ही वह हमारे शत्रु रूपी उन कीटों का संहार कर अप्रत्यक्ष रूप से हमारा कितना हित कर दिखाता है।

एक पीत मक्षिका की बात लीजिये। वह एक भुनगे की इल्ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर चुपचाप जा बैठता है। इल्ली इस मक्षिका को डरा भगाने के लिए अपने शरीर को कुप्पा-सा फुला लेती है। परन्तु मक्खी की अंत:वृत्ति तो किसी विशेष उद्देश्य से उसे वहाँ पहुँचाये होती है।

इल्ली एक विष रस को भी क्षेपित करती है परन्तु पीत मक्षिका चुपचाप अपने तीव्र अंग से इल्ली के त्वचा के नीचे छिद्र कर अपने अंडे प्रविष्ट कर देती है। कालान्तर में अंडे से शिशु उत्पन्न होकर उस जीवित इल्ली को ही भक्षण करना और अपना शरीर पुष्ट करना प्रारंभ करते हैं। इल्ली का सारा शरीर वे इस प्रकार खाकर समाप्त कर देते हैं।

अबाबीलपुच्छीय तितली की हरी इल्ली की त्वचा पर इसी प्रकार पीत मक्षिका अपने अंडे प्रविष्ट कराती है। उसका शिशु उत्पन्न होने पर उस समय तक इस इल्ली को जीवित खाद्य रूप में रखने का प्रयत्न करता है जब तक वह स्वयं कायापलट कर बाहर निकलने योग्य नहीं हो जाता। यह प्रकृति की कैसी विचित्रता है कि एक जीव अपनी जीवन-रक्षा का एक मात्र मार्ग दूसरे जीव की जीवन समाप्ति पर ही निर्भर करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जंतुओं की लुकाछिपी या रूपवंचकता

रूपवंचकता या छद्मरूपता अथवा लुकाछिपी कहने से हमारा अभिप्राय जंतुओं के उस कौशलमय व्यापार से है जिसे वे किसी कारणवश अपना रूप छिपा सकने या अपने से प्रबल आक्रामकों के आकस्मिक प्रहार से बच निकलने के लिए करने का उद्योग करते हैं। विभिन्न जन्तुओं में यह कौशलकार्य विभिन्न रूप का पाया जा सकता है जिसका वर्णन एक बड़ा ही कौतूहलवर्द्धक प्रसंग है। हम अपने जीवन-व्यापार के दैनिक कृत्यों से जन्तुओं के जीवन पर दृष्टि डालने का अवसर भले ही न पा सकते हों परन्तु उनके जीवनयापन के अनेक प्रसंगों में हमें विविधताएँ तथा विलक्षणताएँ देखने-सुनने के लिए बहुत अधिक प्रयास नहीं करना पड़ सकता, परन्तु हम उनके जीवन में इन बहुरंगे पहलुओं का अवलोकन तथा अध्ययन करने का अवसर प्राप्त करें या न करें, ये तो उनके स्वाभाविक जीवन के सहज रूप-से होते हैं जो पता नहीं, कितनी लम्बी अवधि से प्रचलित रहते आ रहे होंगे। यदि हम आज अपनी उत्सुकता, मनोरंजन या ज्ञानवृद्धि के लिए उन जन्तुओं के जीवन की कुछ विचित्र लीलाओं को जानने का प्रयत्न करते हैं तो वे जन्तु हमारी इस जिज्ञासा से उपकृत होने का अवसर नहीं अनुभव कर सकते। उनका जीवन तो हमारी दृष्टि में पड़ने या न पड़ने, दोनों ही अवस्थाओं में पूर्व परम्परा के अनुसार ही चलता रह सकता है। अथवा अपनी सहज आंतरिक उत्प्रेरणा से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुरूप अपने जीवन को परिवर्तित करने का भी प्रयत्न करते रह सकते हैं। हम यहाँ पर उनके केवल कौशलपूर्वक छिपने के उद्योग पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। हमें यह भी ध्यान में रखने की बात है कि केवल अवश स्थिति के कारण ही जन्तु अपना रूप छिपाने का प्रयत्न नहीं कर सकते, बल्कि आहार रूप के शिकार की चिंता में खुले आक्रामक न बनकर छद्मवेश बनाकर छिपे रहने का भी प्रयत्न कर सकते हैं जिससे उनका चपल शिकार धोखे में पड़कर निकट पहुँच कर मृत्युपाश में शीघ्र बँध सके।

लुकाछिपी या रूपवंचकता के लिए शरीर के रंग और रूप को विशेष महत्व दिया जा सकता है। जन्तुओं के रंग-रूप की महत्वपूर्ण शैली मुख्यतया आत्मरक्षा के लिए प्रतीत होती है। प्राय: जन्तुओं का रंग वातावरण के अनुरूप होता है। यदि वे अपने शरीर तथा उसके रंग को वातावरण के अनुरूप साध लें तो वे सफलतापूर्वक अपना शरीर छिपा ले जाते हैं। इसके लिए उनको रंग की एकरूपता से लाभ उठाने के लिए शरीर को निश्चल रखना या कुछ अन्य उपायों को भी करना आवश्यक होता है।

एक दीर्घ कुडू चौपाए की बात लीजिए। नर कुडू की ऊँचाई भूमि से लेकर स्कंध तक साढ़े चार फुट होती है। उसके शरीर का रंग हल्का भूरा होता है। बगल में नीचे की ओर जाती हुई पाँच या छ: श्वेत पट्टियाँ होती हैं। सींग तो बवंडर के चक्कर की भाँति लगातार बल खाती हुई विचित्र ही होती है जिसकी लम्बाई ५१ इंच तक हो सकती है। कदाचित् इतनी लम्बी सींग किसी भी अन्य जन्तु के नहीं होती। लम्बोतरी सींग पीछे पीठ की ओर कर सिर ऊपर सा किये कहीं झाड़ियों में खड़ा होकर इसको अपना शरीर छिपाने का प्रयत्न करते पाया जा सकता है। कुडू सीधा जानवर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है। सिंह, व्याघ्र या वन्य श्वानों से सामना हो जाने पर यह अपने को बचाने का कदाचित् ही कभी प्रयत्न करता हो। अतएव पहले से ही दूर से देखकर भागने और कहीं झाड़ी में शरीर छिपाने भर का ही सहारा उसे होता है। झाड़ियों, घासों आदि में छिपने पर उसके शरीर की पट्टियाँ रंग में घास-पात फूस पत्तियों की परछाईं से ऐसा मेल खाती है कि निश्चल खड़े होने पर इसकी विद्यमानता कदाचित् ही ज्ञात हो सके। यथार्थतः झुंड का झुण्ड इस प्रकार अपने को झाड़ियों में छिपाकर सहज प्राण-रक्षा कर लेता है। अधिक भयग्रस्त न होने की अवस्था में विरल झाड़ियों में भी वे अज्ञात छिपे पड़े रह सकते हैं। भयभीत होने पर ये अपने तीव्र पगों का ही भरोसा कर भागते हैं। नर अपनी सींग पीछे हल्के कुहान के निकट किये भागता है किन्तु मादा तो सींगरहित ही होती है।

यदि रंग को छिपा सकने की सुविधा न हो तो जन्तुओं को केवल भाग-दौड़ द्वारा ही अपनी रक्षा करना एक टेढ़ी समस्या हो जाय। परन्तु हम कुछ जन्तुओं में रंग की एकरूपता के साथ कुछ और कौशल दिखाकर लुका-छिपी का दृश्य उपस्थित होते देखते हैं। कुछ पक्षियों में रंग के वातावरण से मेल खाने के अतिरिक्त शरीर की स्थिति भी विचित्र कर लेने का उदाहरण पाते हैं। ज्योत्स्ना बक (बिटर्न) पक्षी भयग्रस्त होने पर ऐसा कठोर रूप धारण कर लेता है कि तने हुए सीधे खड़े शरीर में चोंच बिल्कुल आकाश की ओर निर्दिष्ट होती है। उसका शरीर धूमिल रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे रंग की रेखा समान ज्ञात होता है जो लम्बे जल वनस्पतियों के तनों के मध्य झिलमिल प्रकाश आने के दृश्य से पूर्ण मेल खाता है। यह पक्षी गर्दन तथा शरीर के परों को संकुचित कर लेता है और बिल्कुल निश्चल पड़ा रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिस्थिति बदलने पर ज्योत्स्ना बक रूप-वंचकता के कौशल को भी परिवर्तित कर देता है। जब झंझावात का वातावरण होता है तो जलवनस्पति के कंपित दंडों से मेल खाने के लिए यह अपने शरीर को भी हिलाता रहता है। उसकी यह क्रिया प्रकट करती है कि लुका-छिपी के लिए रंग के मेल के अतिरिक्त अन्य उपयुक्त व्यवहार की भी नितान्त आवश्यकता होती है।

आस्ट्रेलिया का मंडूक मुखी (मोर पोर्क) पक्षी विचित्र होता है। प्रकृति ने इस पक्षी के परों का ऐसा रंग बनाया है कि यह वातावरण के रंग के अनुरूप अपने को इस प्रकार छिपा सके कि केवल बहुत पैनी दृष्टि से ही देखा जा सके। यह पूर्णतः रात्रिजीवी पक्षी है। इसे रात में शिकार करते समय रूप-वंचकता की सुविधा आवश्यक नहीं होती। यह कीटों से भरे आकाश में बड़े विशाल मुखों को खोलकर चोंच का पीत अंतर्वर्ण प्रदर्शित करता उड़ता रहता है। नेत्र भी चमकते और विस्तारित होते हैं। किन्तु रात को ही उसकी ऐसी क्रियाशीलता रहती है। दिन को यह डालों के ऊपर निश्शब्द सोता रहता है। इसके परों के चित्रित तथा वल्कल-समान रंग से किसी टूटी डाल का ही धोखा हो जाता है। अपनी आँखें बन्द किये हुए इस अवस्था में यह सुरक्षित सोता रहता है। रंगों के मेल के साथ इसकी नीरवता के कारण कोई व्याघात नहीं पहुँचता।

रूप-वंचकता का प्रसार जलाशयों, झीलों तथा समुद्रों में भी पाया जा सकता है। इन जलखंडों में मछलियों के शरीर का रंग जल में उत्पन्न वनस्पतियों के रंग से ही मिलता-जुलता होने से उनको अपना रूप छिपा सकने में सहायता पहुँचाता है।

आस्ट्रेलिया की विस्तृत मूँगों की दीवाल में एक विचित्र जल अश्वमत्स्य रहता है। इसे समुद्री दानव या विशाल अश्वमत्स्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा जाता है। साधारण अश्वमत्स्य इसके सम्मुख इसी प्रकार नगण्य कहे जा सकते हैं जैसे स्वर्ग पक्षी के सम्मुख नन्हीं घरेलू गौरैया हो सकती है। यह विशाल अश्वमत्स्य नारंगी, लाल वर्ण का होता है। उसके शरीर पर बहुकोणीय वर्म होते हैं जिनमें अनेक लहराती परोंयुक्त चर्मीय पट्टियाँ मंडित होती हैं। ये चर्मीय पट्टियाँ या पताकाएँ परोंयुक्त होने से रंग-रूप में शैवाल की पत्र मंजरियों से ऐसा मेल खाती हैं कि देखने पर उनका विभेद नहीं किया जा सकता। उस स्थिति में यह जल-दानव शैवालों के मध्य सहज ही छिपा पड़ा रहता है।

शैवालों में छिपने वाला एक दूसरा निरीह जलजंतु अप्सरा मत्स्य है जो आमेजन तथा उसकी सहायक नदियों में पाया जाता है। इसका रंग काला और श्वेत होता है। नेत्र नारंगी होते हैं। इसका अत्यधिक चपटा शरीर पतला होता है और उस पर रंगीन पट्टियाँ खचित होती हैं। चौड़ाई की ओर से देखने पर इसकी पट्टियाँ लहराते हुए शैवाल के समान प्रतीत होती हैं। किन्तु नये वातावरण से मेल खाने के लिए यह मत्स्य अपना रंग तुरन्त बदल सकता है। उसकी पट्टियाँ लुप्त हो जाती हैं। त्वचा की तह में रंग उत्पादक तन्तु कोशों में रंगों के केंद्रित तथा प्रसारित होने की विशेष व्यवस्था से त्वचा का रंग परिवर्तित दिखाई पड़ता है। यदि मान लें कि लाल रंग के कोष वाले रंग-तन्तु का प्रसार हो रहा है तो काले रंग के कोष का रंग-तन्तु केंद्रित हो जाता है। अतएव जो मत्स्य कुछ पलों पूर्व काला दिखाई पड़ता था, वह अब लाल दिखाई पड़ने लगता है।

रंग-तन्तुओं के केंद्रित तथा प्रसारित करने का नियंत्रण स्नायविक संस्थान द्वारा होता है जिसकी उत्प्रेरणा नेत्रों द्वारा प्राप्त होती है। किंतु रंग में परिवर्तन केवल आत्म-रक्षणार्थ ही नहीं होता;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तापमान, अंधकार, भूख, उत्तेजना, प्रकाश आदि द्वारा भी शरीर के रंग का परिवर्तन हो जाता है। भय के मारे पीला पड़ जाना या रोष से मुख लाल हो जाना केवल महावरे में बोलने की बात नहीं है, बल्कि हम अपने दैनिक जीवन में मानव मुखमुद्रा में इसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। उष्ण देशीय मत्स्यों के रंग में क्षण-मात्र में विभेद देखा जा सकता है। बरमुडा के नस्साऊ ग्रूपर मत्स्य के एक छायाचित्र में जहाँ धूमिल सीसे का रंग दिखाई पड़ सकता है, वहाँ दूसरे ही क्षण के लिए छायाचित्र में निर्मल श्वेत रंग की पट्टियों द्वारा चित्रित रूप देखा जा सकता है।

अष्टपादी मत्स्य में सुरक्षित रहने के रंग का पूर्ण उदाहरण पाया जा सकता है। इसमें रंग बदल लेने का भारी गुण होता है। यह अनेक विभिन्न रंगों में अपना शरीर सहज परिवर्तन कर दिखाता है। इसके शरीर की त्वचा में रंग उत्पादक कोष्ठों का संघट्ट अनेक रंग-रूपों का दृश्य सहज ही प्रस्तुत कर सकता है। दूसरे जन्तु एक वातावरण से दूसरे वातावरण में पहुँचने पर उस परि-वर्तित स्थिति के अनुसार अपने शरीर का रंग बदलने में जहाँ दस-पंद्रह मिनट लगा सकते हैं, वहाँ अष्टपदी यह कृत्य पल मारते कर दिखाता है। यह किसी भी रंग की स्थिति के अनुरूप अविलम्ब रंग परिवर्तित कर दिखाने में समर्थ होता है। यह एक साधारण जन्तु में कैसा अद्भुत गुण है।

अष्टपदा के आठ पैर होते हैं जिसमें प्रत्येक पैर में सहस्रों चिप-कन प्यालियाँ मंडित होती हैं। किंतु इस प्रबल अस्त्र के अतिरिक्त भी रक्षा का एक अन्य साधन उसके पास होता है, जो लुका-छिपी या रूपवञ्चकता का अद्भुत अस्त्र होता है। यह एक नलिका से प्रचुर मात्रा में स्याही बाहर फेंक सकता है। यह स्याही एक विशेष ग्रंथि द्वारा उत्पन्न होकर एक थैली में संचित रहती है। इस भंडार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से फेंकी स्याही से चारों ओर दूर तक की जलराशि बदरंग हो जाती है। इसका प्रभाव आजकल के लड़ाकू जहाजों या हवाई जहाजों द्वारा घनी धूम राशि उत्पन्न कर आक्रामक शत्रु से बचने के उद्योग समान होता है।

अष्टपदी का मुख्य आहार प्रकवचीय मत्स्य हैं। यदि कोई केकड़ा सामने आ जाता है तो उस दिशा में अष्टपदी अपनी भुजा फेंक देता है तथा केकड़े के प्रकवच से अपनी भुजा की चिपकन

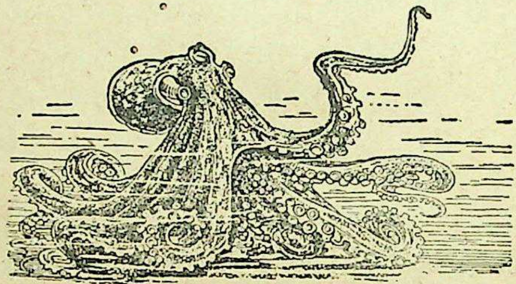

अष्टपदी

प्यालियाँ चिपका कर उसे बेबस कर देता है। प्रकवच निकाल फेंकता है तथा मांस पिंड को अपनी आठों भुजाओं के मध्य स्थित मुखगर्त में डाल देता है।

अपनी प्रबल दृष्टि शक्ति के कारण अष्टपदी अधिकांशतः रात को क्रियाशील रहते हैं। इन जन्तुओं को पानी के पारदर्शी तल द्वारा २० गज की दूरी से रात को दीप्त रूप में देखने का दृश्य पाया जा सकता है। माँझी रात भर जाल लगाये रख कर प्रातः उसमें फँसी मछलियाँ तो रख लेते हैं, किन्तु अष्टपदी को एक ओर फेंक देते हैं। उस समय भी इसके शरीर के कोमल चमड़े से दीप्ति आभासित मिल सकती है। यह कभी-कभी अपनी इस बेबसी की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवस्था में भी लुका-छिपी का उद्योग-सा कर सूखे पत्थरों पर अपनी स्याही के भंडार का क्षेपन कर बैठता है, किन्तु इस अंतिम प्रयास के पश्चात् उनकी प्राण-क्रिया क्षीण हो जाती है। शरीर मृत हो जाता है।

लुका-छिपी या रूप-वञ्चकता का अभिप्राय शत्रु के चंगुल से बचे रहने के लिए उसकी दृष्टि न पड़ने देना है, किंतु इसका दुहरा प्रयोग भी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि दुर्बल जन्तु ही अपनी प्राण रक्षा के लिए रूप-वंचकता की नीति ग्रहण करे, बल्कि अनेक भूखे शिकारी जन्तु भी छिप कर अन्य जन्तुओं पर सहज हमला कर सकने के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं। ऐसे रूपों में शिकार करने वाले जन्तुओं पर कुछ एक स्थानवासिनी मछलियों का भी नाम लिया जा सकता है। दक्षिण अमेरिका में एक मटमैले भूरे रंग की मछली पत्रमत्स्य नाम से पुकारी जा सकती है। वह सूखी पत्ती के समान ही रंग-रूप प्रदर्शित करती है। उसकी निचली ठुड्डी पर पत्तियों की भेंटी के अनुरूप एक उभाड़ रूप का सूत्र भी होता है। यह मछली या तो पानी के तल के निकट पार्श्व भाग के बल तैरती रहती है या अपना शरीर नीचे की ओर झुकाये तैरती है।

पत्रमत्स्य ऐसे वंश की मछली है जिसमें स्कंध देशीय तथा पश्चातवर्ती मत्स्यपादों का रूप पारदर्शक होता है, अतएव पेशियों की गति दृश्य नहीं होती। इस रूप के कारण उसे पानी में अपनी स्थिति छिपा रखने का अच्छा अवसर रहता है। किसी सूखी पत्ती को कोई जल-जंतु नहीं पूछ सकता, अतएव उसको सूखी पत्ती के धोखे में अन्य जल-जंतु छोड़ देते हैं। इस रूप-वंचकता से जहाँ शत्रुओं से बचत मिल सकती है वहाँ शिकार करने में भी उसको इस कारण सहायता मिल सकती है। अन्य छोटे जंतु भी धोखे में पड़ कर उसे केवल सूखी पत्ती-सी समझ कर निकट जा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

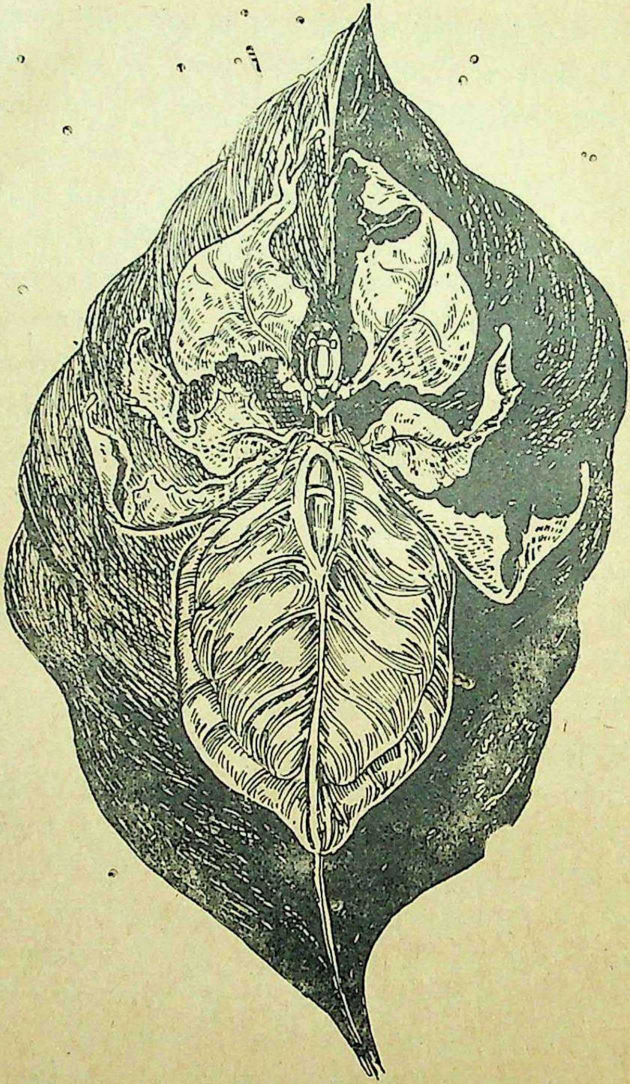

गतिशील पत्रकीट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते हैं और उसके द्वारा सहज आहार बनाये जा सकते हैं। एक पर्यवेक्षक ने लिखा है कि पत्रमत्स्य के जलाशय में कोई छोटी मछली छोड़ दी जाय तो पत्रमत्स्य सूखी पत्ती के ही समान एक अज्ञात गति से उस छोटे जंतु की ओर प्रवाहित होने लगता है, मानो कोई लहर ही उसे प्रपेलित कर रही हो। यदि क्षुद्र मत्स्य डर कर भाग भी जाय तो उसी प्रकार प्रवाहित-सी होकर वह पत्रमत्स्य पुनः उसकी ओर बढ़ता है। निकट आते ही पत्रमत्स्य आखेटक रूप में उग्र बन जाता है और छोटी मछली के निकट जा अपना मुख अकस्मात् विस्तारित कर उसे एक साँस में निगल जाता है।

पत्रमत्स्य की भाँति सूखी या सड़ी पत्ती के नमूने या रूप-वंचकता के जंतुओं की संख्या संसार में न्यून नहीं है। एक सिंहल गतिशील पत्र नाम का जल-जंतु पूर्णतः वंचक जीवन व्यतीत करता है। इसकी रूपवञ्चकता तो जंतु-जगत की एक बड़ी विलक्षण बात होती है। यह प्रार्थी कीट या रामसुग्गा की तरह भयानक हिंसक न होकर पत्ती भक्षक की शान्त वृत्ति ही रखता है। इसके अंडे कंटक आवरणीय बीज सरीखे होती हैं। नवजात शिशु पंखहीन ही होते हैं, उनका रंग लाल पत्र-सा होता है। शाखों के अंकुरों के समान ही उनका रूप होता है, जिन्हें प्रायः खा कर वे जीवित रहते हैं।

पूर्ण वृद्ध गतिशील पत्र कीट का हरा शरीर ठीक पत्ती के रूप के अनुरूप ही गठित होता है। उसके चपटे पैर छोटी पत्तियों के सदृश ज्ञात होते हैं। वे पीले बा जङ्ग के रंग के धब्बोंयुक्त होते हैं। किनारे की ओर ऐसे बेडौल-से होते हैं मानो कीटों द्वारा किनारों के भाग काट खाई पत्ती ही हो।

गतिशील पत्र कीट अरक्षित जन्तु है। उनकी गति अत्यन्त मंद होती है। दिन के अधिकांश समय में वे चुपचाप शांत पड़े रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्ती के सूखे रूप के समान जहाँ उनका रूप है, वहाँ उनमें गति नहीं-सी होती है, केवल पत्ती कंपित होने के समान ही उनका शरीर भी कंपित होता है।

जंतुओं की लुका-छिपी का एक अद्भुत प्रकार रूपवञ्चकता है। रूप-वञ्चकता का अर्थ किसी दूसरे जंतु के रूप का अनुकरण कर अन्य जन्तुओं को धोखा देना है। ऐसी रूप-वञ्चकता का अनेक उद्देश्य हो सकता है। अधिकांशतः एक जन्तु किसी ऐसे दूसरे जंतु के रूप का अनुकरण करने का प्रयत्न कर सकता है, जिससे अन्य जन्तु भय खाते हैं। किसी गर्दभ का शेर की खाल धारण कर दूसरे जंतुओं को भयभीत करने की कथा प्रसिद्ध ही है। ऐसी रूप-वञ्चकता के लिए यह भी आवश्यक होता है कि उस भयावह रूप-अनुकरणीय जन्तु के निवास स्थान तथा स्वभावों के अनुरूप ही इस रूप-वञ्चक जन्तु का निवास तथा स्वभाव भी जान पड़े।

एक चींटा पत्रकर्तनक कहलाता है। वह पत्ती का भाग काट कर पीठ पर लाद कर चलता है। एक अन्य अरक्षित वनस्पति कीट बिल्कुल दूसरी जाति का ही होता है। परन्तु वह अपना हरित मुखाग्र इसी पत्रकर्तनक चींटे समान विकसित कर लिये होता है। रूप-रंग में वह अपना रूप इस कटी पत्ती ढोने वाले चींटे समान बना लिये होता है। ये दोनों कीट ब्रिटिश गायना में पाये जाते हैं। पत्रकर्तनक चींटा अपनी बिल में कटी पत्ती ले-ले जाकर चबाता है और लुगदी बना कर उसका ढूहा-सा बना लेता है। उसी पर किसी कुकुरमुत्ते का उत्पन्न करने का उपक्रम करता है। यह कुकुर-मुत्ता ही उनका मुख्य आहार होता है। इन चींटों की पंक्ति की पंक्ति अड़ोस-पड़ोस के पौधों से पत्तों के भाग काट-काट कर पीठ पर ढोती पाई जा सकती है। इन चींटों में से प्रत्येक की पीठ पर एक-एक पत्ती का खंड होता है। उन्हीं की पंक्ति में रूप-वञ्चक कीट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी हिला-मिला चलता है। वह सफलतापूर्वक अपना रूप छिपा कर उनका ही सगा-सा अपने को सिद्ध करता आगे बढ़ता जाता है।

अपनी रक्षणविधि की विचित्रता के लिए अफ्रीका का एक भुनगा प्रसिद्ध है। प्रायः इल्लियाँ अपने शरीर के आवरण रूप में थैलियाँ, नलिका, कोष्ठक आदि बना लेती हैं। परन्तु परोपजीवी कीट उनके अंदर भी अपना प्रवेश कर उन इल्लियों की त्वचा में घुस जाते हैं और उसके शरीर के भीतर ही भीतर अपनी वृद्धि कर उस आश्रयदाता का लोप कर देते हैं और अपना शरीर पुष्ट कर बाहर आते हैं। परोपजीवी कीटों की इस संहार लीला को कदाचित् अफ्रीका का वह भुनगा वंश अंतःवृत्ति के कारण किसी प्रकार इतना जान गया है कि इल्ला रूप की अपनी संतान में भी ऐसी विपत्ति की अग्र-सूचना पहुँचा देता है। यह इल्ली इस मृत्यु-आशंका से अपनी बचत का जो यत्न करती है, वह इतनी निम्न श्रेणी के जंतु-जगत की बुद्धि का प्रबल उदाहरण ही कहा जा सकता है।

अफ्रीका के इस भुनगे की इल्ली अपनी आवरण नलिका में किसी परोपजीवी कीट का प्रवेश न होने देने के लिए एक अद्भुत युक्ति करती है। अपनी आवरण नलिका या रक्षक थैली उत्पन्न करने के समय अपने शरीर से कुछ बुलबुले उत्पन्न करती है। प्रत्येक बुलबुला के उत्पन्न होने पर वह उसके चारों ओर रेशम के कुछ सूत्र लपेट देती है तथा उसे ढकेल कर आवरण नलिका के ऊपर जमा देती है। धीरे-धीरे ऐसे बुलबुलों का गुच्छ-सा बन जाता है जो उसकी आवरण नलिका के ऊपर उस परोपजीवी कीट के अंडों के झुण्ड समान प्रतीत होता है। इस वञ्चक कृत्य का यह परिणाम होता है कि परोपजीवी कीट यह समझने लगते हैं कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी जाति के किसी कीट ने उस इल्ली पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार अफ्रीका के इस भुनगे की इल्ली अपना प्राण बचा लेती है।

स्पंज केकड़ा नाम का एक केकड़ा अपनी रक्षा का जो प्रबन्ध करता है, वह तो जंतु-जगत की प्राण रक्षा, बुद्धि तथा प्रयास का एक अनुपम ही उदाहरण है। केकड़े का शरीर अरक्षित होता है। परन्तु वह अपनी बुद्धि तथा उद्योग से रक्षित बना लेता है। वह किसी स्पंज को लेकर उसमें छिद्र बना कर अपना शरीर प्रविष्ट कर लेता है। अतएव ऊपर स्पंज का शल्ययुक्त तल किसी भी आक्रामक जीव को ग्राह्य नहीं हो सकता। उधर स्पंज केकड़ा इस प्रकवच के अन्दर रह कर अपने चंगुल बाहर निकाल कर आहार भी ग्रहण करने में समर्थ होता है, परन्तु कोई संकट सम्मुख आते ही वह अपना चंगुल भी सिकोड़ कर स्पंज की स्वनिर्मित गढ़ी में ही छिपा लेता है। रक्षण-कार्य का ऐसा साधन बिरले जन्तुओं में ही पाया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उभयजीवी जंतु

मछली पानी से बाहर आते ही प्राण दे देती है। हम कह सकते हैं कि पानी में ही उसके प्राण बसते हैं किंतु यथार्थ बात यह होती है कि अगाध जलराशि में जीवन यापन करने की अधिक सुविधा दे सकने के लिए उसके शरीर में प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी है कि उसके गलफड़े पानी में विद्यमान ओषजन की मात्रा ही ग्रहण कर उसे जीवित रख सके किंतु एक बार ऐसी व्यवस्था हो जाने पर खुली हवा में श्वास ले सकने में वह समर्थ नहीं होती। उसके जो अंग पानी से ही ओषजन ग्रहण करने की युक्ति जानते हैं वे खुली हवा ग्रहण करने में इतने अशक्त होते हैं कि जीवन क्रिया ही समाप्त हो जाती है।

मेंढक भी जल-जन्तु है किंतु श्वास लेने के संबंध में मछली समान अशक्त नहीं होता। वह जल में तो देर तक रह ही सकता है, भूमि पर खुली हवा में भी जीवन-यापन कर सकने में समर्थ होता है। ऐसे दोहरे जीवन की शक्ति रखने वाले जन्तुओं को उभयजीवी नाम दिया जाता है। उनका जीवन-व्यापार जलजीवी तथा स्थल-जीवी दोनों रूपों में चल सकता है। मेंढक, मेंढकियों के अतिरिक्त अन्य भी जन्तु हैं जो ऐसे रूप के उभय-जीवी होते हैं।

मंडूक का ही एक सुदूरवर्ती बन्धु मेक्सिको के मूल निवासी, ऐज़्टेक लोगों द्वारा एक्सोलोल कहा जाता था। यह विचित्र रूप का जन्तु होता है तथा उत्तरी अमेरिका तथा मेक्सिको की कुछ झीलों में पाया जा सकता है। इसकी गर्दन के पार्श्व भागों से तीन जोड़े कोमल रोमीय गलफड़े निकले होते हैं। जब तक यह जल-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जीवी रहता है, और इसी रूप में जीवन-यापन तथा सन्तानोत्पादन कर मृत होता है, यह एक्सोलोल नाम से पुकारा जाता है।

एक्सोलोल का ज्ञान मेक्सिको के स्पेनदेशीय विजय-कर्ताओं ने प्राप्त किया था। इसके संबंध में उन्हें कोई विशेष बात नहीं ज्ञात हो सकी थी। मूलवासी इसे भून कर मसाले लगा कर भक्षण करते थे। एक पुच्छदार उभय-जीवी जन्तु न्यूट जन्तु सरीखा होता है जिसे सैलेमेंडेर कहते हैं।

यूरोप में बिंदुकित सैलेमैंडेर पाया जाता है। उसके सम्बन्ध में यह जनश्रुति थी कि अग्नि द्वारा ही उसकी उत्पत्ति तथा पोषण होता था। अमेरिका में चीता सैलेमैंडेर नाम की जाति न्यूयार्क से लेकर केलिफोर्निया तथा मेक्सिको में पाई जाती है। किंतु मध्य उन्नीसवीं शताब्दी तक कोई भी इस जन्तु का सम्बन्ध एक्सोलोल जन्तु से नहीं बतलाता था। पेरिस में एक्सोलोल कई पीढ़ी तक १८६५ ई० में पाले गये तो उनमें एक विचित्र परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। उनके शरीर से गलफड़ों तथा मत्स्यपादों का लोप होने लगा तथा फेफड़े से श्वास लेने लगे। उनकी आँखों पर पलक निकल आये, पीले धब्बे उत्पन्न हो गये और उनका कायापलट-सा होकर सैले-मैंडेर का रूप बन गया। अतएव यह सिद्ध हो गया है कि वयस्क एक्सोलोल कोई स्वतन्त्र जन्तु नहीं है, परंतु जल में रहने वाली इल्ली है जो उत्तरी अमेरिका के सैलेमैंडेर का ही रूप है।

आज इस बात का पता लगा लिया गया है कि पुच्छयुक्त शिशु सैलेमैंडेर या एक्सोलोल का पुच्छहीन सैलेमैंडेर रूप में किन विधियों से कायापलट होता है। जब जलाशय का जल सूख रहा हो तो विषम परिस्थिति के कारण जलजीवी एक्सोलोल स्थलजीवी रूप धारण करता है। यदि बंदी रूप में एक्सोलोल को रख कर कृत्रिम रूप से थिरायड ग्रंथि का आहार दिया जाय तो एक्सोलोल किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी समय कायापलट कर स्थलजीवी बनाया जा सकता है। परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि जल में ही रहते रहने के कारण एक्सोलोल इल्ली रूप में ही आजीवन पड़ा रह जाता है। रूप परिवर्तन का नाम नहीं लेता।

अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमेरिका में फेफड़ेयुक्त मछलियाँ पाई जाती हैं। उनको आदिम रूप का जन्तु कह सकते हैं, जिनको डेवोनियनकाल (आज से अनेक कोटि वर्षों पूर्व के युग) में प्राप्त होने वाले प्रस्तरावशेष रूप में मछलियों के समान रूप धारण किये पाया जाता है। सृष्टि के आरम्भकाल में जीव-जगत में मछलियों की प्रधानता थी। और यह विश्वास किया जाता है कि उस समय फेफड़ोंयुक्त मछलियाँ होती थीं जो खुली हवा में श्वास ले सकें या फेफड़े और गलफड़े दोनों का प्रबंध उनमें पाया जाता था।

अफ्रीका की फुफ्फुसीय मछलियों में एक पंकजीवी होती है जो सूखे मौसम में किसी सोते के पेंदे में धँस जाती है। उसके पंक के अन्दर छिपने के छिद्र के ऊपर एक द्वार होता है जिससे वह अपने फेफड़े द्वारा श्वास ले सकती है। इस प्रकार वह सूखे मौसम के छः मास काट ले जाती है और सूखी मिट्टी के नीचे ही छिपी पड़ी रहती है। जब वर्षा का पुनः आगमन होता है और सूखी मिट्टी आर्द्र हो जाती है तो उस अवधि तक अपने शरीर की आर्द्रता अपने अङ्ग से निःसृत रस से ही सिंचित कर रक्षित रखे रहने के पश्चात् दीर्घशयन से जागृत हो उठती है, और अपने मत्स्यपादों की सहायता से पानी में पहुँच जाती है। वर्षा के आगमन पर वह खाने में राक्षसी-सी बन जाती है तथा अगले वर्ष सूखे मौसम में पुनः दीर्घशयन काल में जीवन बचे रह सकने के लिए जल की सुलभता के समय ही यथेष्ट शक्ति ग्रहण कर लेने का उद्योग करती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अफ्रीका की फुफ्फुसीय मछलियाँ अपने पंकीय विवर के साथ जलजन्तु शालाओं में लाई जा सकती हैं जहाँ कि वे पानी में छोड़ जाने पर सजीव बन जाती हैं। परन्तु किसी प्रकार पुनः मिट्टी में धँसकर अपनी रक्षा करने या मिट्टी में छिपने का उदाहरण दुहराते नहीं देखा जा सका है।

पंकगामी मछली उष्ण प्रदेशीय अफ्रीका में पाई जाती है। वह आधा जीवन जल में व्यतीत करती है तथा आधा भूमि पर व्यतीत करती है। यह अपने स्कन्धदेशीय मत्स्यपादों की सहायता से पंक तल पर चल सकती है तथा अपने शिकार पर उछल भी सकती है। एक पथरीले ढोंके से दूसरे ढोंके पर उछल कर तटवर्ती जन्तुओं का शिकार कर लेती और तट पर स्थित वृक्षों की जड़ पर चढ़ जाने का दृश्य उपस्थित करती है। सिर के ऊपर स्थित नेत्र बहुत बाहर निकले होते हैं। परतु वे ठीक उसके नीचे स्थित गड्ढों में सिकोड़ कर रक्खे भी जा सकते हैं। यह छः इञ्च लंबी होती है। सन्तानोत्पादन या शत्रुओं से रक्षा पाने के लिए यह जल खंड में भाग आती है। गलफड़े नम रहते रहने तक बड़ी देर तक खुली हवा में रहती है।

उभयजीवी जंतुओं में एक संदूकनुमा कछुआ होता है। कुछ कछुए तो केवल स्थल पर ही रहना पसंद करते हैं तथा कुछ जल-वासी ही होते हैं, परन्तु सन्दूकनुमा कछुआ उभयजीवी होता है। इसका संदूकनुमा कछुआ नाम पड़ने का यह कारण है कि इसका प्रकवच कब्जों की सहायता से बिल्कुल संदूक की तरह बन्द किया जा सकता है। इसका अधोतल ऐसा बहुरंजित होता है कि किसी भी दो कछुए के अधोतल की बहुरंजकता एक-सी नहीं हो सकती। इसके हाथ पैर केवल तैरने के काम नहीं आते, बल्कि भूमि पर चलने में भी सहायक होते हैं। पैरों में आंशिक रूप से ही अँगुलिजाल होता है किन्तु जलजीवी कछुए के पैर की उँगलियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में तो पूर्णतया बत्तख के पैरों समान जाली की परत का बन्धन होता है।

भूमि पर रहते हुए संदूकनुमा कछुआ (मंजूषावत कच्छप) शर्मीला, डरपोक-सा ही बना रहता है और दिन को कहीं छिपा ही पड़ा रहता है। गोधूलि वेला ही शिकार करने निकलता है। स्थलजीवी कछुए वनस्पति भोजी होते हैं, परन्तु यह केचुए, कीड़े-मकोड़ों आदि का आहार करते हैं। आहार की खोज में रहते समय यदि इस पर किसी अन्य जंतु का आक्रमण हो जाय तो यह तुरन्त ही अपने अंग अपने प्रकवच के अन्दर सिकोड़ कर छिपा लेता है। रक्षा का यह प्रबंध ही कछुओं को दीर्घजीवी बनाता है। उनकी आयु प्राय: ६० वर्ष की पायी जाती है। दीर्घजीवन का दूसरा कारण इसका शरद ऋतु में स्थलजीवी कछुए की भाँति भूमि में धँस कर दीर्घ शयन करना और पुन: वसंत ऋतु में जागृत होने का स्वभाव है।

ऊदबिलाव एक वन्य जंतु है जो आयरलैंड से भारत तक पायाँ जा सकता है। यह यथार्थत: स्थलजीवी जंतु है किन्तु इसने जल-जीवी वृत्ति बना ली है। इसके रोम नर्म होते हैं। पैरों की उँगलियाँ अँगुलिजालमय होती हैं जिससे तैरने में सहायता मिलती है। यह मछलियों से भी तीव्रगति से पानी में भाग सकता है।

ऊदबिलाव का मुख्य आहार मछली है किन्तु यह समुद्रतट से शंबुकों को भी खाता है। दलदली स्थानों से मेंढक को अपना आहार बनाता है, तथा जंगली बत्तखों और खरगोशों को भी हड़प जाता है। कहा जाता है ऊदबिलाव सालमन मछली का पुष्ट मध्य-भाग ही खाता है और सिर तथा दुम का भाग छोड़ देता है। इसके शिकार का समय विशेषत: रात्रिकाल ही है।

ऊदबिलाव की औसत लम्बाई एक गज होती है। तोल में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पन्द्रह सेर हो सकता है। इसकी भव्य आँखें और कान बालों में अंदर छिपे पड़े होते हैं। पानी में प्रविष्ट करने पर उनको एक पर्दे से बिल्कुल बंद कर सकता है। इसका निवास नदियों के कगारों की बिलों में होता है जिनके द्वार पानी में जाकर खुले होते हैं। वे दो या तीन बच्चे वर्ष में एक बार उत्पन्न करते हैं। नवजात शिशु तीन मास तक नेत्रहीन ही रहते हैं। इस अवधि में नर ऊदबिलाव अपने विवर के द्वार पर प्रहरी का कार्य करते खड़ा रहता है। बच्चों को पानी में तैरने की कला माता-पिता द्वार सीखनी पड़ती है किन्तु शीघ्र ही तैराक बन जाते हैं।

ऊदबिलाव शीतऋतु-शायी नहीं होते। जब आहार का मार्ग बंद हो, जल जमकर हिम बन गया हो तो उस समय शयन कर जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा ये अन्य क्षेत्रों में आहार ढूँढ़ लेने का उद्यम करते हैं। ऐसे संकट काल में ये मुर्गियों का अधिक शिकार करते हैं। हिमतल के नीचे से भी जंतुओं को पकड़ते हैं। ऊदबिलाव के उद्यमपूर्ण जीवन के उदाहरण स्वरूप हम इन्हें एक रात में ही पंद्रह मील तक चक्कर काटते पाते हैं किंतु ऐसा उद्यमी जंतु भी मनुष्यों के हाथ नष्ट होता जा रहा है। कहा नहीं जा सकता कि कब उसकी जाति ही विलुप्त हो जायगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शल्य विज्ञान की कहानी

प्राचीन काल में प्रागैतिहासिक युग में भी चीर-फाड़ के प्रमाण किस प्रकार मिलते हैं ? जब किसी विज्ञान का ही सर्वथा अभाव नहीं था, बल्कि सभ्यता का भी विकास नहीं हुआ था; लोहे, ताँबे, काँसे आदि के भी हथियार नहीं बने थे, तब भी संसार के किसी कोने में कठोर, नोकीले पत्थरों से ही मनुष्य अपनी खोपड़ी क्यों स्वेच्छा से फोड़वाता था ? सभ्यता का उदय होने पर भारत, चीन, मिस्र, यूनान, रोम, अरब आदि देशों ने किस तरह चीर-फाड़ की विद्या या शल्य-विज्ञान का प्रारम्भ किया ? मध्य युगों में किस प्रकार घोर अंधकार का फैलाव रहा ? किस तरह कब्र से मुर्दे उखाड़ या चोरी कर कहीं-कहीं लोगों ने चीर-फाड़ का विशेष ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ किया ? इन बातों की लोमहर्षक तथा विलक्षण कहानी इस पुस्तक में दी गई है।

भारत में प्राचीन काल में किस प्रकार के यंत्र तथा शस्त्र भारतीय प्राचीन चिकित्सकों द्वारा प्रयोग किये जाते थे ? धन्वंतरि कौन थे ? उन्होंने शल्य विज्ञान का किस प्रकार प्रारम्भ किया ? सुश्रुत संहिता में शल्य-विज्ञान का वर्णन किस प्रकार मिलता है ? इन बातों की चर्चा भी मूल श्लोकों को देकर की गई है।

इन रूपों में शल्य-विज्ञान के प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास के साथ आधुनिक शल्य-विज्ञान का अत्यन्त विलक्षण, उन्नत तथा भव्य वर्णन भी इस पुस्तक में पढ़ें। हिन्दी में नवीन तथा प्राचीन शल्य-विज्ञान की चर्चा प्रथम बार एकत्र पढ़ने का अवसर इस पुस्तक द्वारा प्राप्त करें।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आविष्कारों की कहानी

इन जीवन-कथाओं में उन वातावरणों का मनोरम चित्रण है जिनमें आविष्कारकों को रह कर अपनी अनुपम बुद्धि तथा कार्य-शक्ति का उदाहरण रखना पड़ा होगा। बेल, एडिसन, मारकोनी आदि के नाम तो हमें जब-तब सुनने को भी मिलते हैं; परन्तु हम यह नहीं अनुभव करते कि किस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों से भी छिप कर, उनके तानों से बचने का उद्योग कर मारकोनी को रात-दिन ऐसी कल्पना को मूर्त्त रूप देने का साहस रखना पड़ा जिसे आज बेतार का तार कहा जाता है। इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त अपने पुत्र को मनोरंजन की सामग्री देने के लिए वयोवृद्ध डनलप को अकस्मात् पहिये की ठोस हाल के स्थान पर वायुभरी रबड़ नली रखने की सूझ उस समय विशेष महत्त्व की भले ही न जान पड़ी हो; परन्तु आज हमें उस घड़ी की स्मृति विशेष उत्प्रेरणा का कारण होती है। फोर्ड को अपनी भीषण आर्थिक विपत्ति तथा दर्जनों अभियोगों में पराजय से साहस छोड़ देने का एक भी क्षण आ सका होता तो आज हम फोर्ड द्वारा निर्मित इतनी सस्ती जनसुलभ मोटर गाड़ियाँ न देख पाते। विलियम फ्रीजी ग्रीनी का नाम आज फिर से स्मृत किया जाने लगा है जिसने चलचित्र का आविष्कार कर संसार को विलक्षण मनोरंजन की सामग्री उपस्थित किया; परन्तु अपने जीवन में दिवालिया बन कर वह अनेक बार जेल की हवा खाता रहा। इसी तरह सभी कहानियाँ विलक्षण हैं।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलुप्त जन्तु

चट्टान के अन्दर जीवों की ठठरी के अवशेष कैसे रह सकते हैं? हाथी की ऊँचाई के बराबर कौन पक्षी होता था? कौन-सा जन्तु ३० फीट तक ऊँचा होता था? किस जानवर के जाँघ की हड्डी ६ फीट की पाई जाती थी? कौन से भारी जंतु दो पैर पर चलते थे? किस चिड़िया के फैले हुए पंख उसके शरीर को २५ फीट चौड़ा बना सकते थे? पैर से साँस लेने वाला त्रिफंकांगी जंतु कैसा होता था? पूँछ में भाले और पीठ पर हड्डियों की खड़ी ढालें किस जंतु के होती थीं? छः सींगों और ८० मन बोझ का षट्शृङ्गी जंतु कब और कहाँ पैदा हुआ?

ऐसी समस्याओं को समझने के लिए आप यह पुस्तक पढ़ें जिसमें ५० करोड़ वर्ष पूर्व से आज तक के उन जंतुओं का वर्णन है जिनका संसार से लोप हो गया। उनकी कहानी उपन्यास या जासूसी कथा से अधिक रोमांचक है। विलुप्त जंतुओं की कथा के साथ पृथ्वी की कहानी की झाँकी भी देखने को मिलेगी।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण-कार्य में यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अन्य हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी उस सूची पर लिखा हुआ नहीं है, जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं तो आज ही एक कार्ड अपने नाम पते सहित हमारे पास लिख भेजें। एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमित रूप से विविध प्रकार के मनोरंजक साहित्य के—जिनमें उपन्यास, (जासूसी और सामाजिक) कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य आदि भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अपने यहाँ के किसी भी पुस्तक-विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अगर कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे। स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मँगाने पर लगभग एक रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक-विक्रेता से अनुरोध कीजिये कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्तक-विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी भी बचत में सहायक होंगे।

(२) यदि कोई पुस्तक-विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे तो आप उसका नाम-पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए हम उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें।

किताब महल ● प्रकाशक ● इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरल विज्ञान की उत्कृष्ट पुस्तकें

प्रो०—जगपति चतुर्वेदी, सहायक संपादक, 'विज्ञान'

प्रत्येक पुस्तक में लगभग २०० पृष्ठ तथा बहुसंख्यक चित्र हैं। प्रत्येक पुस्तक में विज्ञान के एक नये विषय का वर्णन सरल, मनोरंजक तथा प्रामाणिक रूप से पढ़ने को मिल सकता है, जिसे विज्ञान से अनभिज्ञ पाठक भी सहज हृदयंगम कर सकता है। इनमें प्रथम दो पुस्तकों पर ५००) तथा अन्य आठ पुस्तकों पर ८००) का पुरस्कार उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लेखक को प्रदान किया गया है। प्रत्येक का मूल्य २) रु०

- विलुप्त जन्तु
- बिजली की लीला
- समुद्री जीव-जन्तु
- वनस्पति की कहानी
- जीने के लिए
- ज्वालामुखी
- भूगर्भ विज्ञान
- पेनिसिलिन की कहानी
- वैज्ञानिक आविष्कार भाग १, २
- परमाणु के चमत्कार
- कोयले की कहानी
- विलुप्त वनस्पति
- तत्वों की खोज में
- कीटाणुओं की कहानी
- शल्य-विज्ञान की कहानी
- अद्भुत जन्तु
- विलक्षण जन्तु
- आविष्कारकों की कहानी
- शिकारी पक्षी
- जलचर पक्षी
- वन-वाटिका के पक्षी
- उथले पानी के पक्षी
- तारा-मंडल की कहानी
- धातुओं की कहानी

किताब महल, इलाहाबाद